वाभ्रव्य को सिहंलेश्वर के पास भेजकर यों कहवाया कि 'लीजिए, अब रत्नावली के देने में आप अस्वीकार न कीजिए, क्योंकि आपकी भांजी वासवदत्ता लवणानल में जलमरी।' तब निरुपाय हो, सिंहलेश्वर ने आपसे सम्बन्ध बनाए रखने के लिये रत्नावली मेरे साथ कर दी और मैं जहाज़ पर चढ़कर भारतवर्ष की ओर चला। किन्तु दैवी दुर्घटनावश समुद्र में किसी पहाड़ से टकरा कर जहाज जल में डूब गया और साथ ही रत्नावली, मैं और वाभ्रव्य तथा और जितने व्यक्ति जहाज पर थे, सभी डूब गए।"

इतना सुनते सुनते वासवदत्ता की आखों से चौधारे आंसू बहने लगे और वह अपनी ममेरी बहिन रत्नावली के लिये लम्बी लम्बी उसासें लेने लगी। यद्यपि योगन्धरायण ने झूठ मूठ वासवदत्ता को 'जली मरी' कह कर उसकी सौत बनाने के लिये रत्नावली को मँगवाया था, पर इस बातको सुनने से उसे कुछ भी कष्ट न हुआ, क्योंकि वह चाहती थी कि जिसमें राजा का अभ्युदय हो वही मेरे लिये सर्वोपरि सुख है। परन्तु अब उसी रत्नावली के लिये, कि जो यदि जीती होती तो अपनी सौत बनती, वासवदत्ता बड़ा खेद करने लगी। थोड़ी देर में सब कोई कुछ कुछ शान्त हुए। तब राजा के कहने पर वसुभूति ने अपनी कहानी यों पूरी की—

"किसी प्रकार काठ के टुकड़े के सहारे से बहता बहता मैं किनारे लगा और कई दिन पीछे कंचुकी वाभ्रव्य से भी भेंट हुई। वे भी मेरी ही भांति बचे थे। बस, फिर हम दोनों आपके दर्शन को यहां आए। हाय! रत्नावली खोकर अब जीते जी मैं किस तरह सिंहलेश्वर को अपना मुहं दिखाऊंगा"।

अवसर जानकर बसंतक ने कहा–"आप लोग अपने अपने दृष्टान्त के अनुसार धीरज रखिए। जिस विधाता ने आप लोगों को डूबने से बचाया है, आश्चर्य नहीं कि वही रत्नावली को भी जीती जागती लाकर मिलादे।"

अब वाभ्रव्य ने बसंतक से उस रत्नमाला के विषय में कुछ पूछना चाहा था कि इतने ही में "आग लगी, आग लगी" का भयानक कोलाहल चारो ओर से सुनाई देने लगा, जिसे सुनकर ये लोग भी चिहुंक उठे और देखने लगे कि कहां आग लगी है। परन्तु उन लोगों को दूर नहीं जाना पड़ा। सामने ही अंतःपुर के सबसे बड़े प्रासाद में ऐसी भयानक आग लगी हुई दिखाई पड़ी, मानो आग का पहाड़ खड़ा हो। धूएं के साथ अग्निशिखा आकाश तक जाती थी और चारों ओर से केवल यही ध्वनि सुनाई पड़ती थी कि "आग लगी! आग लगी!!"

अपने महल में ऐसी भयानक आग लगी हुई देख कर वासवदत्ता बड़ी घबराई और रोकर राजा से बोली,—"हाय! हाय! मैं बड़ी राक्षसी हूं। प्राणनाथ! रक्षा करो, मैंने डाह से सागरिका को अपने महल में सोने की सांकल से बांध रक्खा है, उसे बचाओ। हाय! प्यारी, सागरिका!"

वासवदत्ता के मुख से सागरिका का वृत्तान्त सुनकर राजा उस अग्नि समुद्रमें कूद पड़ा, बसन्तक, वभ्रव्य, वसुभूति और वासवदत्ता ने हजार समझाया, लाख सिर पटका, पर राजा ने किसी-की एक न मानी और यही कहता हुआ आग घुस गया कि—"अब हम भी सगरिका के साथ ही जल मरेंगे।"

जब राजा आग में धंस गया तो वासवदत्ता भी अपनेको धिक्कारती हुई कि "इन सब उपाधियों की जड़ मैं ही हूं" आग में घुस गई। फिर तो बसन्तक भी यह कह कर कि "प्रिय वयस्य के बिना अब हम भी जीकर क्या करेंगे" आग में कूद पड़ा। पीछे पीछे 'हाय हाय करते हुए वसुभूति और वाभ्रव्य भी अग्नि में घुस गए और वासवदत्ता की परिचारिकाएं भी रोती पीटती आग में चली गईं और सबको ग्रास करके अग्नि देवता आकाश पर्यन्त अपनी शिखा की दिव्य छटा पहुंचाने लगे।

(१३)

इधर ते यह सब हुआ, और उधर राजा ने क्या किया से सुनिए। विरह अग्नि के ताप के आगे राजा इस प्रलयाग्नि के तुच्छ समझ अन्तःपुर में बासवदत्ता के शयन मन्दिर में पहुंचा। घर धूएं से भर गया था, बड़ी कठिनता से उसने सागरिका के ढूंढ़ निकाला। ऐसे समय में एकाएक राजा के अपने सामने देख कर सागरिका ने मन में कहा—"मैंने ते समझा था कि यह आग छिनभर में मेरे सारे संताप के दूर कर देगी, पर हाय! प्राणनाथ के देख कर ते फिर जीने की इच्छा होती है"। यह सोचकर राजा से बोली—"प्राणपति! मुझे बचाओ"।

राजा ने सागरिका के हृदय से लगाकर कहा—"प्राणाधिके, सागरिके! डरो मत। यह आग तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। क्योंकि तुम्हारा समागम स्वयं सारे संतापों के दूर करता है"।

इतना कह कर एकाएक राजा चिहुंक कर ठठक रहा, क्योंकि उसने देखा कि एकाएक वह प्रलय की सी आग न जाने कहां लोप हे गई; और सब बस्तु ज्यों की त्यों थी माने वहां कहीं आग लगीही न थी। इतने ही में बासवदत्ता, बसन्तक, वसुभूति, बाभ्रव्य और सब परिचारिकाएं "आश्चर्य, आश्चर्य!!" कहती हुई वहीं पहुंच गईं। फिर ते राजा के साथ मिलकर सभी आश्चर्य करने लगे कि ऐसी भयानक आग गई किधर, और ऐसी गई कि उसने अपना चिन्ह तक न छोड़ा!!! राजा ने कहा—"ऐं! यह स्वप्न था, या जादू?"

बसन्तक ने कहा—"हमें जान पड़ता है कि यह उसी ऐन्द्रजालिक की दुष्टता थी। वह दुरात्मा कहता था कि 'अभी एक खेल और दिखलाना बाकी हैं' से यह उसीने खेल खेला होगा"।

बासवदत्ता—"उस बिचारे ऐन्द्रजालिक के अब बुरा भला न कहो"।

बसन्तक—"इसलिये कि प्रिय मित्र के इसी बहाने सागरिका प्राप्त हुई"।

इतने ही में सागरिका के देखकर वसुभूति ने बाभ्रव्य के कान में कहा—"इस कन्या का रूप ते हमारी राजकुमारी 'रत्नावली' से पूरा मिलता है! यह क्या बात है?"

बाभ्रव्य—"और बसन्तक के गले की माला का भी अच्छा मेल मिल रहा है!"

वसुभूति ने बाभ्रव्य से सम्मति करके राजा से पूछा कि—"महाराज, यह कन्या आपके पास कहां से आई?"

इसपर बासवदत्ता ने कहा—"यह बात महाराज नहीं जानते। मुझे महामंत्री यैागन्धरायण ने सागर से पाकर इसके दिया और इसका नाम 'सागरिका' बतलाया था।"

इस बात से वसुभूति के निश्चय होगया कि यही सिंहलेश्वर की कन्या रत्नावली है। इतने ही में रत्नावली ने वसुभूति के चीन्हा और "हाय! मन्त्री वसुभूति!" इतना कहकर रोदिया। तब ते बासवदत्ता घबराई और कंचुकी बाभ्रव्य से पूछने लगी कि—"क्या मेरे मामा की लड़की, मेरी छोटी बहिन रत्नावली यही है?"

"इसमें कुछ भी सन्देह नहीं" यह कहते कहते महामन्त्री यैागन्धरायण भी वहीं पहुंचे।

यह आश्चर्यजनक वृत्तान्त के सुनकर राजा स्तम्भित हे गया। उसने यैागन्धरायण से पूछा "ऐं! महाकुलसम्भूत सिंहलेश्वर महाराज बिक्रमबाहु की कन्या रत्नावली यही हैं?"

यैागन्धरायण—"हां, महाराज!"

इतना सुनते बासवदत्ता दैाड़कर रत्नावली का बन्धन खोलने लगी और राजा ने यैागन्धरायण से कहा "यह तुम्हें क्योंकर मिली?"

यैागन्धरायण—"सिद्ध की बात सुनकर मैंने सिंहलेश्वर से ......"

राजा ने बात काटकर कहा—"यह सब तो हम मन्त्री वसुभूति से सुन चुके हैं। तुमने इसे कहां पाया सो कहो।"

यौगन्धरायण—"जिस समय रत्नावली लकड़ी के सहारे से समुद्र के तीर पर लगी, उस समय कौशाम्बी के धनदास नामक एक महाजन की दृष्टि उसपर पड़ी। धनदास ने रत्नावली के गले में बहुमूल्य रत्नमाला देखकर समझा कि यह किसी बड़े घराने की लड़की होगी, यह सोचकर वह इसे मेरे पास ले आया। मैंने उस कन्या को पहिचान लिया क्योंकि उसका चित्र मैं देख चुका था। अतएव मैंने सागरिका उसका नाम रक्खा और मुख्य भेद को छिपा कर इसे रानी के हाथ सौंप-दिया कि यदि यह अन्तःपुर में रहैगी तो कभी न कभी आपकी दृष्टि इसपर अवश्य पड़ेगी। फिर इसको ब्याह कर आप अवश्यमेव चक्रवर्ती होंगे और सिद्ध की भविष्यवाणी भी सत्य होगी। सो मेरे सोचे हुए सब कार्य सिद्ध हुए।"

यौगन्धरायण की बात सुनकर राजा ने हँस कर कहा—"तो इससे जान पड़ता है कि बहुत से काम आप हमसे बिना पूछे भी कर डालते हैं। वाह! यहां तक हो गया और हमें कुछ खबर तक नहीं!"

यौगन्धरायण—"स्वामिन्! मन्त्रीपन सहज नहीं है। बहुत से ऐसे कार्य आजाते हैं, जिनका निबटेरा मैं स्वयं करता हूं और फिर ऐसे कामों को बिना पूछे करने में कोई दोष नहीं जिनमें आपही की पूरी पूरी शुभचिन्तना हो।"

राजा—"ठीक है। तो क्या यह ऐन्द्रजालिक का बखेड़ा भी आपही ने रचा था?"

यौगन्धरायण—"इसमें भी कोई सन्देह नहीं, क्योंकि यदि ऐसा मैं न करता तो आप महल के भीतर सांकल से बँधी हुई रत्नावली को क्योंकर पाते और वसुभूति ज़ी को भी इसकी क्या खबर लगती? अस्तु। मेरा जहां तक बस चला मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा किया, अब महारानी जी ने अपनी बहिन को पहिचान लिया है इसलिये अब जो यह उचित समझैं सो करैं"।

इतने में बासवदत्ता ने रत्नावली के बन्धन खोलकर उसे गले लगाया और हँस कर यौगन्धरायण से कहा—"मन्त्री जी! आपने अपनी चाल के आगे सबकी चाल धीमी कर दी। अब जो आप इतनी बातें बना रहे हैं, सो सीधी तरह योहीं क्यों नहीं कह देते कि 'रत्नावली महाराज को देदो'।

बसन्तक—"इसमें अधिक कहने का क्या प्रयोजन है? बुद्धिमान के लिये संकेतमात्र बहुत है"।

बासबदत्ता—"अच्छा, प्यारी बहिन, रत्नावली, आ, मैंने तुझे बिना जाने बूझे बहुत सताया; पर अब मैं बड़ी बहिन के योग्य कोई काम करूं"। यह कह कर बासवदत्ता ने अपने हाथसे अपने बस्त्राभरण पहिराकर रत्नावली को सँवारा और राजा के सामने लाकर कहा—"प्राणवल्लभ! आप मेरी प्यारी बहिन को ग्रहण करिए, और देखिए, इसके माता, पिता, बन्धु, बांधव, सब दूर देश में हैं, इसलिये आप इसके साथ ऐसाही बर्त्ताव करिएगा कि जिसमें यह उन्हें स्मरण कर दुखी न हो।"

राजा ने आदर से रत्नावली का हाथ पकड़ कर बासवदत्ता से कहा—"देवी! तुम्हारे अनुग्रह का पुरष्कार हम आदर से ग्रहण करते हैं और निश्चय जानो रत्नावली के विषय में तुम्हें कभी सोच न करना पड़ेगा"।

बसन्तक ने उछल कर कहा, "भगवति बासवदत्ते! आपका देवी नाम आज यथार्थ हुआ"।

इस उत्सव में वह 'रत्नमाला' जो बसन्तक को सुसङ्गता ने दी थी, बसन्तक ने पुरष्कार में पाई और आनन्द ध्वनि से सारा राजप्रासाद गूंज उठा।

—

कोकिलाष्टक

भाषा-पद्यानुवाद-समेत

(१)

हे कोकिल ! कुरु मौनं जलधरसमयेऽपि पिच्छिला पृथ्वी ।
विकशितकुटजकदम्बे, वक्तरि भेके कुतस्तवावसरः ॥

सवैया

बैठत क्यों नहिं मौन गहे ,
सुनु कोकिल ! मीत ! ये सीख हमारी ।
मेघन के धनि ऊधमसों ,
जहँ कीच मई ही भई छिति सारी ॥
फूले फले कुटजादि कदम्बन की ,
जहँ सोहति है चहुँ धारी ।
दादुर की टिटकारनि मैं ,
तुव बोलिवेकी है कहां अब पारी ॥

(२)

अस्यां सखे ! बधिरलोकनिवासभूमौ,
किं कूजितेन खलु कोकिल ! कोमलेन ।
एतेहि दैवहतकास्तदभिन्नकर्णास्त्वां,
किन्नमेवकलयन्ति कलानभिज्ञाः ॥

सवैया

सुनु, मीत ! कहा बहिरे जन की ,
या निवासथलीन पैं जाइबे मैं ।
अरु कोकिल ! बारहि बार तिन्हैं ,
मधुरे निज बैन सुनाइबे मैं ॥
जिनकों बिधि बाम दियोही नहीं ,
जुग कानकों आपु बनाइबे मैं ।
नहिं चूकहिंगे मतिहीन कछू ,
हठि आंगुरी तोहि दिखाइबे मैं ॥

(३)

येनोषितं रुचिर पल्लवमञ्जरीषु,
श्रीखण्डमण्डित रसालवने सदैव ।
दैवात्स कोकिलयुवा निपपात निम्बे,
तत्रापि रुष्टबलिपुष्टकुलैर्विवादः ॥

सवैया

चन्दन पूर रसाल के कानन ,
सुन्दर पल्लव मंजरि माहीं ।
जाने निवास कियो चित चाहि कै ,
कोकिल कूजित-कंठ सदाहीं ॥
सोई दिनानि के फेरनिसों ,
इत आइ पर्‌यो अब निंब के पाहीं ।
खाऊं बलीभख काग कठोर ,
अकारन वाद विवाद कराहीं ॥

(४)

येनानन्दमये बसन्तसमये, सौरभ्यहेलामिलद्-
भृङ्गालीमुखरे रसाल शिखरे, नीताः परा वासराः ।
आकालस्य वशेन कोकिलयुवा, सोऽप्यद्य सर्वा दिशो-
भ्राम्यद्वायसचंचुघातविदलन्मूर्द्धा मुहुर्धावति ॥

सवैया

जाने सुगन्धसने मद्‌माते ,
बसंत के भृङ्गन सों सरसायो ।
सुन्दर साल रसालन ही पै ,
सदा सुख सों निज द्योस गँवायो ॥
सोई दसोहूं दिसान मैं कोकिल ,
भागहि तें भ्रम भूरि भुलायो ।
कागन के इन चोचन की,
सिर ठोकर खात फिरै भरमायो ॥

(५)

काकैः सह प्रवृद्धस्य, कोकिलस्य कलागिरः ।
खलसङ्गोऽप्यनैष्ठुर्य्यं कल्याणप्रकृतेः क्वचित् ॥

दोहा

बाढ़ेहू संग काक के, कोकिल के कल बैन ।
खल संग करिहु न कहुं सुजन, गहैं निठुरता ऐन ॥

(६)

भ्रातः ! कोकिल ! कूजितैन किमलं, नाघर्येत्य नष्टेगुणं ।
तूर्ष्णीं तिष्ठ विशीर्णपर्णपटलच्छन्नः क्वचित्कोटरे ॥
प्रोद्दामद्रुमसङ्कटे कटुरटत्काकावली संकुलः ।
कालोऽयं शिशिरस्य सम्प्रति सखे ! नायं वसन्तोत्सवः ॥

सवैया

कोकिल ! मीत ! न बोलु कछू ,
कहु, नीचन ने गुन जान्यो कितै कब !
यातें रहै चुप होइ कछू दिन ,
सूखे पलास के कोटर मैं दब ॥
ऊंचे महीरुह की फुनगीन पैं ,
बोलत काग कठोर इतै अब ।
ये पतझार के द्योस अबै ,
पर बोलियो तूहू बसंत लगै जब ॥

(७)

तव तद्वाचि माधुर्य्यं जातं कोकिल कूजितं ।
यैः पोषितोऽसि तानेव जातपक्षो जहासि यत् ॥

सोरठा

पाई अधिक मिठासु, तैं कोकिल निज बैन मैं ।
कारन पाल्यो जासु, होत पाँख त्याग्यो तिनहिं ॥

(८)

काके त्वयिच विभेदः स्वरूपतो नास्ति हे कोकिल !
काकः काकः स्वरतस्त्वमपि तथैव पिकः पिक इति ॥

दोहा

तेरे अरु, पिक ! काक के, भेद रूप मधि नाहिं ।
तू कोकिल सुर सों भयो, वह पुनि काक कहाहिं ॥

फ़ोटोग्राफ़ी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

(९)

फ़ोटो उतारने में कभी कभी नेगेटिव अनेक कारणों से बिगड़ जाता है (१) निर्दिष्ट अथवा आवश्यक काल तक प्लेट को एक्सपोज़ न करने से प्लेट का फ़िल्म पतला पड़ जाता है। इसी कारण से तसबीर छापते समय चित्र अच्छा न होकर अधिक काला होजाता है। इस अवस्था में निम्न लिखित उपाय के करने से चित्र कुछ अच्छा हो सकता है।

नेगेटिव में जहां पतला पड़ गया है उसे घना करने को, अर्थात् जहां से कालिमा अधिक आती है उसे कम करने को, अंग्रेज़ी में इन्टेन्सीफाइंग (Intensifying) कहते हैं। इस कार्य में अनेक प्रकार के मसालों को काम में लाना पड़ता है। सब लोगों के सुबीते के लिये यहां पर एक साधारण रीति का वर्णन कर दिया जाता है।

पहिले जिस नेगेटिव का फ़िल्म पतला पड़ गया हो उसे ६, ७ मिनिट तक पानी में भली भांति धो लो। यदि नेगेटिव पर कुछ तिलहट देख पड़े तो एक रिकाबी में कुछ सोडा पानी में घोल कर उसमें नेगेटिव को पहिले धोओ और तब पुनः पानी में उसे धोओ। इसके पीछे नीचे लिखे अर्क को बनाओ—

मरकरी आफ़ क्लोराइड	१० ग्रेन
पानी	१ आउंस

जिस दिन नेगेटिव को इन्टेन्सीफ़ाई करना हो उसके एक दिन पहिले इस अर्क को बना रखना चाहिए क्योंकि मरकरी को पानी में घुलते कुछ अधिक समय लगता है। इसलिये अर्क को बिना एक दिन पहिले बनाए उससे अच्छा काम नहीं हो सकता। इसे बड़ी सावधानी से काम में लाना चाहिए, क्योंकि यह पारे से बनता है और घाव पर लग जाने से हानि पहुंचाता है। एक रिकाबी में इस अर्क का साधारण अंश लेकर उसमें पानी मिला दो और नेगेटिव को उसमें इस भांति से रख दो कि फ़िल्म ऊपर की ओर हो और वह उस अर्क में डूबा रहे। थोड़ी ही देर में नेगेटिव का काला रङ्ग बदलने लगेगा और वह सुन्दर सफ़ेद रङ्ग का हो जायगा। देखते देखते जब नेगेटिव का रङ्ग सफ़ेद काग़ज़ सा हो जाय तब उसे उस रिकाबी में से निकाल कर साफ़ पानी में धोओ और एक दूसरी रिकाबी में इतना पानी भर दो कि जिसमें वह नेगेटिव अच्छी तरह उसमें डूब जाय। इस पानी में १०, १२ बूंद लाइकर अमोनिया मिला

कर उस नेगेटिव को उसमें रख दो। तुम्हारे देखते ही देखते उसका रंग फिर गाढ़ा काला हो जायगा। अब नेगेटिव को निकाल कर अच्छी तरह पानी में धोओ, पीछे सुखा कर उससे काग़ज़ पर तसवीर छापने से वह अच्छी आवेगी।

(२) यदि नेगेटिव का फिल्म किसी कारण से घना हो जाय तो उसको काम लायक बनाने के लिये उसे नीचे लिखे अर्कों में कुछ क्षण धोना चाहिए। यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि डेवेलप करते समय ध्यानपूर्वक कार्य न करने से फिल्म मोटा पड़ जाता है। यदि उसी समय साव-धानी से कार्य किया जाय तो उसका मोटा पड़ना असम्भव है।

ऐसे मोटे फिल्म वाले नेगेटिव को स्थायी अर्थात् फ़िक्स्ड करते समय, अर्थात् डेवेलप करके उसे फिक्सिंग बाथ में धोते समय, नियत परिमाण से कुछ अधिक हाइपो के मिला देनेही से प्लेट का फिल्म मोटा न पड़ेगा।

फेरी साइनाइड आफ़ सलिडेसन को रेड प्रूसि-यट आफ़ पोटाश के साथ मिला कर धोने ही से कार्यसिद्धि होगी, अथवा केवल साइनाइड आफ़ पोटाश को पानी में घोल कर उससे प्लेट को धोने से फ़िल्म पतला पड़ जायगा।

प्लेट के फ़िकस्ड हो जाने पर भी उसे पुनः हाइपो में धोने से फिल्म पतला सड़ सकता है पर पुनः हाइपो में धोने पर उसे भली प्रकार से पानी से धो लेना आवश्यक है।

(३) कभी कभी प्लेट को डेवलप करते समय उसका फिल्म चारो ओर से सिकुड़ कर बीच में फैल जाता है। इसको अगरेज़ी में फ्रीलिङ्ग (freeling) कहते हैं। यह दोष कभी कभी प्लेट के ठीक न बनने से उत्पन्न होता है। डेवलपर में अधिक क्षार पदार्थ के रहने से, वा उसके अधिक तेज़ न होने से अथवा हाइपो के अधिक पड़जाने से प्लेट की यह दुर्गति होती है। यदि प्लेट की यह अवस्था फ़िक्सिङ्ग बाथ में धोते समय हो जाय तो प्लेट को बड़ी शीघ्रता से ५ मिनिट तक फिटकरी के पानी में भिगो दो। यदि इससे भी प्लेट ठीक होता न जान पड़े तो दानेदार फिटकरी को काम में लाओ। यदि प्लेट में चित्र के निकलते निकलते वा उसके डेवलप होते ही फिल्म पतला पड़कर सिकुड़ने लगे तो उस अवस्था में प्लेट का ठीक कर लेना नितान्त कठिन है। इस अवस्था में डेवलपर बनाने के लिये जिस पानी से काम लेना हो उसमें निमक मिला देना उचित है। यदि अक्सलेट डेवलपर से प्लेट धोना हो तो उसे पहिले फिटकरी के पानी से धो लेना चाहिए।

कभी कभी प्लेट के फिल्म को सिकुड़ने से रोकने का एक यह भी उपाय है कि उसके चारो ओर मोम लगा कर तब उसे डेवलप करो। बरफ़ के पानी के प्रयोग करने से सुन्दर तसवीर बन सकती है।

(४) समय समय पर प्लेट का फिल्म अनेक कारणों से पतला पड़ता जान पड़ता है। ऐसे प्लेट से तसबीर छापने पर भी अच्छा फल कभी नहीं प्राप्त होता। इसके अनेक कारण हैं जिनका नीचे वर्णन किया जाता है। इनपर ध्यान रख कर काम करने से इस दोष से चित्र के बिगड़ जाने का भय नहीं रहता। फ़िल्म के पतले पड़ जाने के कारण ये हैं—डेवलपर का कम होना, उसमें तेज़ी की कमी, और नियत समय से अधिक काल तक एक्सपोज़ होने से, कभी कभी प्लेट के पुराने होने से अथवा उसके शीत स्थान में पड़े रहने से यह दोष उत्पन्न होता है और प्लेट में उसे डेवलप करने पर फुट-कियां फुटकियां पड़ जाती हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि अमोनिया मिला कर डेवलप करने से प्लेट अच्छा और स्पष्ट नहीं निकलता। इसका कारण यह है कि शीशे में से आवश्यकतानुसार अमोनिया निकालते निकालते उसका ग्यास उड़ जाता है। इससे उसमें तेज़ी नहीं रहजाती और

ऐसे डेवलपर के प्रयोग करने से चित्र के कभी स्पष्ट आने की आशा नहीं की जा सकती। इससे बचने का उपाय यह है कि अमोनिया जब मोल लिया ते। उसमें से कुछ अलग दूसरी शीशी में रख लिया और बाकी एक रक्षित स्थान में रख छोड़ा। जो अलग ले लिया हो उसमें उतनाही पानी मिला देना चाहिए जितना अमोनिया है और तब उसे अवश्यकतानुसार काम में लाना चाहिए। कथित कारणों से यदि प्लेट पतला पड़ जाय ते। उसे इन्टेन्सीफ़ाई कर लेना चाहिए।

(५) अनेक कारणों से प्लेट के ऊपर एक प्रकार का धुंधलापन कभी कभी देखने में आता है। इसको अंग्रेज़ी में फ़ाग कहते हैं। इसमें से, लाइट फ़ाग (हलका धुंधलापन), केमिकल फ़ाग (रासायनिक धुन्धलापन), ग्रीन फ़ाग (हरा धुन्धलापन) और आलकाली फ़ाग प्राय देखने में आते हैं।

लाइटफ़ाग–किसी प्रकार से प्लेट में चांदना लगजाने से इस प्रकार का धुन्धला पन उसपर आजाता है। केमिकल-फ़ाग भिन्न भिन्न द्रव्यों के परस्पर संयोग अथवा रासायनिक उपादान मूलक किसी चूक के हो जाने से इस प्रकार का दोष उत्पन्न होता है। ग्रीन फ़ाग–यदि प्लेट नियत काल से कम समय तक एक्सपोज़ किया जाय और डेवेलप करते समय इसे ध्यान से अधिक देरतक डेवलप करने से तसवीर साफ़ साफ़ निकल आवेगी। उसे रासायनिक द्रव्यों में रखने से यह दोष होता है। प्लेट के अधिक पुराने होने से भी यह दोष हो जाता है, परन्तु इससे प्रिण्ट करने में कोई बिशेष हानि न होगी। आलकाली फ़ाग–डेबलपर में अमोनिया सोडा आदि क्षारीय पदार्थों की मात्रा अधिक पड़जाने से इस प्रकार का धुन्धलापन प्लेट पर आ जाता है।

विदेश में फ़ोटो उतार कर उसे डेवेलप कर चित्र के देखने की इच्छा हो और वहां कोई स्थान ऐसा न हो जो अन्धकार गृह का काम देसके ते। साथ में एक डार्क टेण्ट ले जाना चाहिए। यह ठीक अन्धकार गृह का काम देता है। इसमें किस



डार्क टेण्ट

प्रकार सामिग्री को सजाना और काम करना चाहिए यह ऊपर दिए चित्र को ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट विदित हो जायगा।

नेगेटिव वार्निश

नेगेटिव को स्थायी रखने के लिये उस पर "नेगेटिव वार्निश" लगाना चाहिए, नहीं ते। छापते समय उसपर दाग लगजाने की आशङ्का रहती है। नेगेटिव को सुखा लेने के अनन्तर उसे आग पर कुछ गरम करके और उसी आगसे थोड़ी दूर-पर हट के जिसमें कि उसको कुछ कुछ आग की गरमाहट पहुंच सके, प्लेट को बांए हाथ की वृद्ध तर्ज्जनी और मध्यमा अँगुली से पकड़ कर उसके फ़िलम का भाग ऊपर को करके दहने हाथ से धीरे धीरे उपयुक्त वार्निश को प्लेट की दहनी ओर के सामने से लगाओ, और प्लेट के चारो ओर जब वार्निश लग जाय तब जो बचजाय उसे पुनः शीशी में डालदो; तदनन्तर इसी प्रकार सीधा प्लेट रखके १५ सेकंड तक उसे हिलाते रहो, जिससे उपर्युक्त वार्निश प्लेट के किसी भाग में अधिक जम न जाय। इस क्रिया के करने के पीछे प्लेट को पुनः आग पर सेकके सुखा लेना चाहिए।

नेगेटिव वार्निश करने के पहिले वा पीछे रिटच करना होता है, अर्थात् नेगेटिव के वे स्थान जो छापने में साफ़ न दिखाई देते हों वा अधिक काले

छपते हों, उन स्थानों पर पेन्सिल से काला करदेने से वा करालेने से उसका दोष जाता रहता है।



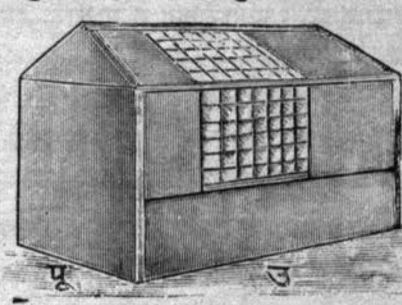
रिटचिङ्ग वक्स

इस कार्य के करने में कुछ ड्राइङ्ग जानने की आवश्यकता है, क्योंकि बिना इसके जाने शेड और लाइट अर्थात् छाया और आलोक को ठीक ठीक नहीं रख सकते। पहिले पेन्सिल को आगे से खूब महीन बनाकर, नेगेटिव को शीशे के फ़िल्म पर रिटचिङ्ग मिडियम लगा के सुखा लो और तब धीरे धीरे बिन्दु बिन्दु करके पेन्सिल से कार्य्य करो। पहिले पहल इसके सीखने वाले के लिये तो यह काम कुछ कठिन है, इसी कारण से प्लेट के पीछे की ओर लाल स्याही वा लाल रङ्ग के लगा देने से भी यह रिटच का काम होजाता है।

उपर्युक्त कार्य्य के समाप्त होने के पीछे चित्र छापना होता है।

चित्र के छापने के पहिले मनुष्य को चित्र उतारने के विषय में कुछ जान लेना आवश्यक ज्ञात होता है। प्रत्येक शिक्षार्थी को प्रथम अपने इष्ट मित्र और कुटुम्बियों के चित्र उतारने की विशेष इच्छा होती है। पहिले कहा जा चुका है कि मनुष्य का प्रकृत चित्र उतारने के लिये एक विशेष स्थान की आवश्यकता है कि जहां विशेष न तो मैदान हो और न रुका हुआ स्थान हो कि जहां उत्तम रीति से प्रकाश पहुंचता ही न हो। इस कार्य्य के लिये लाइट रूम मे जैसा उत्तम चित्र उतर सकता है वैसा दूसरे स्थान पर नहीं उतर सकता। इस प्रकार से चित्र उतारने के लिये एक ग्लास लाइट रूम अर्थात् एक शीशे का रोशनीदार मकान बनाना आवश्यक है।

यह घर पूर्व पश्चिम कम से कम २०–२५ फ़ीट लम्बा और ८-१० फ़ीट चौड़ा होना चाहिए और वह ऊंचा भी ९–१० फ़ीट होना चाहिए। इसके पूर्व की ओर तख्ते से एक दम बन्दकर दो और उत्तर की ओर पूर्व की ओर से तीन फुट और पश्चिम की ओर से दस फुट तख़ते से बिलकुल बन्दकर दो। इसी प्रकार दक्षिण ओर भी तख़ते से एकदम बन्दकर दो। पश्चिम ओर ठीक बीचो बीच में तीन फुट चौड़ी और छःफुट लम्बी एक खिड़की



शीशे का घर

रखकर बाकी सब जगह बन्दकर दो। उत्तर ओर वाले सात फुट स्थान में (घर २० फुट लम्बा है) जो खुला हुआ है, घिसी हुए कांच की टट्टी लगा दो; इस प्रकार ऊपर दिए हुए चित्र के अनुसार छत बना लेना चाहिए। उत्तर की ओर वाला पूर्व और पश्चिम का कोना जिस तरह तख़ते से बन्द किया गया है, इस घर की छत भी उसी प्रकार काठ या क्रिकेट से बन्द करनी होगी; केवल बीच वाली जगह सात फुट घिसे हुए कांच से बन्द करनी होगी, और छत के दक्षिण ओर भी ठीक उत्तर ओर की भांति छावनी करनी चाहिए। इस शीशे के घर (Glass room) के भीतर कांच के नीचे और बगल में सादे कपड़े का पर्दा लगाना चाहिए। यह पर्दा इस तरह लगाना चाहिए कि जब चाहे सरका दिया जासके। और एक नीले रंग का पर्दा दक्षिण ओर वाले कांच के नीचे इस तरह से टांग

रक्खो कि जिसमें आलोक गृह में अपने इच्छानुसार आलोक को घटा बढ़ा सको।

घर के भीतर पूर्व की ओर व्याक ग्रौण्ड (Back ground) परदा लटका कर उसके डेढ़ फीट सामने जिसका चित्र उतारना है, उसे बैठाओ। फिर अपने क्यामरा को लगा कर पहिले कही हुई रीति से फ़ोकस कर लो। कुछ दिन अभ्यास करने ही से इस विषय में अच्छी तरह जानकारी हो जायगी। तात्पर्य यह कि आदर्श मूर्त्ति पर उत्तम रीति से छाया आलोक का लाना ही लाइट रूम का मुख्य प्रयोजन है।

इस आलोक गृह के बनाने और इससे काम लेने के विषय में कतिपय स्मरण रखने योग्य वैज्ञानिक नियम हैं, परन्तु उनका इस छोटीसी पुस्तक में वर्णन करना कठिन है और वे साधारण फोटोग्राफ़ी सीखने वालों के विशेष जानने के विषय भी नहीं हैं, इसलिये यहां पर उनका वर्णन नहीं किया गया।

मनुष्य का चित्र उतारना

मनुष्य का चित्र उतारने के लिये खुला हुआ या खुलासा स्थान होना चाहिए, क्योंकि फ़ोटोग्राफ़ी सीखने वालों में बहुतेरे ऐसे भी होते हैं जिन्हें लाइटरूम या आलोक गृह के बनवाने का सामर्थ्य या सुबीता नहीं है। पर जिन्हें ऊपर कहे हुए घर के बनवाने का सामर्थ्य है, उन्हें चाहिए कि घर के आगे, छत के ऊपर या किसी खुले से स्थान में इस आलोक गृह को बनवावें। पहिले जो घर बनाने के नियमादिक लिखे गए हैं, उन्हें कोई भूल न जाय। फिर आलोकगृह के बनने पर उसकी दीवार हलके नीले रंग से रंग देनी चाहिए। और जिन्हें वैसे घर के बनवाने में सुबीता न हो, वे दालान बरामदे या अच्छी तरह उंजाले घर में चित्र उतारें।

जिसका चित्र उतारना है, उसे ऐसेही उंजाले स्थान में बैठा कर पहिले कही हुई रीति के अनुसार फ़ोकस करना चाहिए। जिसका चित्र उतारना है, उसे अच्छी तरह बैठाना चाहिए, अर्थात् उसकी अवस्था, सज धज और उसके साधारण हाव भाव समझ कर जैसे बैठाने में वह उत्तम जचे, वैसे ही उसे बैठाना चाहिए। उसकी अवस्था की ओर दृष्टि रखने का कारण यही है कि यदि वह व्यक्ति अत्यन्त दरिद्र हो, सब कोई उसे दरिद्र जानते हों तो उसका पहिराव दरिद्र के योग्य होना चाहिए, क्योंकि उसे अच्छी पहिरावा पहिरा कर चित्र उतारने पर चित्र अच्छा होने पर भी एकाएक उसे कोई पहिचान न सकेगा। जैसे कोई अध्यापक ब्राह्मण सर्वदा रामनामी की उपरनी और हरिनाम की झोली धारण करता हो, और उसे सब कोई कर्मिष्ठ ब्राह्मण समझते हों, उसीको यदि तुम कोट पतलून पहिरा साहब बना कर चित्रउतारो तो उस चित्र को देख कर कोई भी उस ब्राह्मण को न पहिचान सकेगा। इसलिये जिस व्यक्ति की जो पोशाक हो उसे वही पोशाक पहिरा कर चित्र उतारना चाहिए। स्वाभाविक रीति से जो व्यक्ति खड़े या बैठे रहने पर जिस भाव से रहता हो उसे उसी प्रकार बैठा कर या खड़ा करके चित्र उतरना चाहिए। कोई कोई लोग बांई या दहिनी ओर जरा सिर टेढ़ा रखते हैं, कोई कोई सीना ऊंचा करके खड़े होते हैं, और कोई कोई स्वभाव से ही दांत निपोरे रहते हैं; अतएव उन लोगों को उसी प्रकार स्थिर करके चित्रउतारना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति का चित्रउतारना हो उसके बैठाने का ढंग शिल्पियों (Artist) की पसन्द पर निर्भर हैं। यहां पर जिनका चित्र उतारना हो, उनके बैठाने के विषय में कई एक बातें कहते हैं। जिसका चित्र उतारते हो, उसे अत्यन्त सरल भाव से बैठाओ, उसके हाथ पैर आदि बहुत आगे बढ़े या पीछे खैंचे न हों। नेत्र क्यामारा की ओर कुछ तिरछे हों, और उसी स्थान पर नेत्र के लिये एक निर्दिष्ट स्थान दिखला दो। बलिष्ठ व्यक्तियों को यन्त्र से कुछ दूर थोड़ा तिरछे भाव (Sideway) से बैठाओ। इकहरे बदन के या दुबले पतले व्यक्तियों को ठीक सामने और यन्त्र के

कुछ पास बैठाओ। लम्बे हाथ पैर वालों को उन्हें कुछ सिकोड़ कर बैठाओ। हाथ को ऊंचा या गोदी में सरल रीति से रखवाओ, जिसमें अधिक ऊंचा या नीचा न दीख पड़े। अथवा एक हाथ बगल वाले टेबिल के ऊपर रखकर दूसरे हाथ में पुस्तक या ग्रैार कुछ धरादो। टेबिल के ऊपर वाले हाथ की आधी मुट्ठी बन्धी हुई हो। पहिले आलोक ग्रैार छाया का (Light and Shade) विषय जो कहा गया है उसमें गड़बड़ न होने पावे। इसका ध्यान रक्खो जिन लोगों का मुख अधिक गोल या चैाड़ा हो, नेत्र छोटे या नासिका सकरी ग्रैार छोटी हो, उन लोगों को तिरछे से बैठाना चाहिए; अर्थात् उन लोगों का एक बगल तो समस्त देख-पड़े ग्रैार दूसरा बगल थोड़ा दिखलाई दे। जिनका मुख अत्यन्त सुन्दर ग्रैार नासिका ग्रैार नेत्र भी वैसेही हों, उन लोगों को इस ढव से बैठाना चाहिए कि जिसमें उन लोगों के एक बगल के ४ भाग के ३ भाग ग्रैार दूसरे बगल के ४ भाग का १ भाग अच्छी तरह से स्पष्ट दिखलाई दें। यदि एक ही प्लेट पर दो व्यक्तियों के चित्र उतारने हों तो एक व्यक्ति को दूसरे की ग्रोर कुछ घुमाकर बैठाना चाहिए या एक ही टेबिल के बाएं ग्रैार दहिने, दोनो ग्रोर दो कुर्सियों पर दोनो को कुछ घुमाकर बैठाना चाहिए, जिसमें यह जान पड़े कि मानो वे दोनो आपस में बात चीत कर रहे हैं। ग्रैार उन दोनों में से प्रत्येक व्यक्ति की एक एक बाहु टेबिल के ऊपर रखवानी चाहिए। एक संग अनेक व्यक्ति का या परिवार का चित्र उतारना हो तो आलोक चित्रकार की बहुदर्शिता की आवश्यकता होती है। ऐसी जगह उनके पसन्द पर ही कार्य्य निर्भर है। तैाभी जब जिस अवस्था का चित्र उतरना हो, उस समय चित्र में एक या अनेक व्यक्ति अपने अपने स्वाभाविक भाव ही से बैठे या खड़े हों। अस्वाभाविक भाव का चित्र कभी न उतारना चाहिए। शिशु ग्रैार बालकों का चित्र सहज ग्रैार स्वाभाविक अवस्था में उतारना चाहिए।

जिस व्यक्ति का चित्र उतारना हो उसे काले रङ्ग के कपड़े पहिराने चाहिएं। फीके रङ्ग के कपड़े पहिरने से चित्र सादा या सफ़ेद हो जाता है ग्रैार उत्तम नहीं होता। पीले ग्रैार लाल रङ्ग के कपड़े पर चित्र उत्तम नहीं उतरता। नीले रङ्ग का कपड़ा चित्र में सफेद हो जाता है। तात्पर्य्य यह है कि न बहुत गाढ़े ग्रैार न बहुत हलके रङ्ग के कपड़े पहिरने चाहिएं।

लाचारी से यदि सफ़ेद कपड़े पहिर कर चित्र उतरवाना पड़े तो खूब साफ़ या धोया कपड़ा न पहिर कर कुछ मैला कपड़ा पहिर कर चित्र उतरवाना चाहिए।

[क्रमशः]

पृथ्वीराज-प्रयाण

जननी हमैं सीख अब दीजै।
परम कुपूत पूत तेरो यह
ताहि बिदा अब कीजै॥

पूत कुपूत होत बहुतै पै
होत कुमाता नाहीं।
बरु कुपूत पै अधिक मातु रुचि
होतै रही सदाहीं॥

करिकै यहै भरोस मातु मांगत
तुम पै कर जोरे।
छमियो सब अपराध हमारे
पुत्र-सनेह निहोरे॥

करिकै बहुत साध जनमायो
बहु आसा करि पोष्यो।
राज छत्र दै मान बढ़ायो
सबहि भांति संतोष्यो॥

पै या भाग्यहीन नैं माता!
कोउ आसा न पुरायो।
केवल बोझ भयो तुव ऊपर
दिन दिन अधिक सतायो।

रक्त-प्रवाह बहाइ, जीति बहु
देस छत्र सिर धारयो।
राज बढ़ावन लोभ मातु हम
देश बन्धु बहु मारयो॥

सोइ सब पाप श्राइ सिर नाच्यो
छलियन के छल हारयो।
हाय मातु! तोहि दै मलेच्छ कर
चहत विदेश सिधारयो॥

परम पवित्र शस्य धन पूरित
रत्नमई सुखदाई।
जासु अनूप रूप पै सुरगन
रहत सदा ललचाई॥

रही अनादि काल सों पालित
जो आरज भुज छाहीं।
ताहि अधम अति भाग्यहीन हम
राखि सके हठ नाहीं॥

मातु! बहुत सुख पायो तुम मम
पुरुषन के आधीना।
अब वह सुख सपने से ह्वै हैं
हाय दैव! कह कीना॥

यद्यपि हम सबही विधि दोषी
लग्यो कलङ्क हमारे।
पै निर्दोष मातु सब भांति हि
जैा जिय न्याय बिचारे॥

अपुनेहि भाई बन्धु आपुही
करैं जो छल अरु द्रोहा।
तैा रच्छा ह्वै सकै कैान विधि
जैा बिधिहीं बुधि मोहा॥

ताहू पैं निज भुज प्रताप
दुष्टन कों दियो भगाई।
छली चोर छल सों जीते
याकी नहिं हमैं हँसाई॥

होनहार जो रह्यो भयो अब
सोच किए फल नाहीं।
मातु विदा अब देहु हाय!
बिछुरत तुव पद नख छाहीं॥

पुण्य भूमि मैं जनमि हाय! अब
मरन चल्यो मरुदेसा।
आर्यध्वजा दै शत्रु हाथ मैं
यह अति हाय कलेसा॥

अपुने किए कर्मफल भोगन
मैं कछु दुख मोहि नाहीं।
पै जननी तुव भावि दसा
विचारि हृदय फटि जाहीं॥

ये देवालय वेदशास्त्र ये
यह गोब्राह्मण पूजा।
यह पवित्रतम धर्मभाव जग
मैं न जासु सम दूजा॥

हाय! महाद्रोही मलेक्ष कर
परि सब कलुषित ह्वै हैं।
पाप ताप पूरित भुव करिकै
घोर यंत्रणा दैहैं॥

जाकी विद्या कला अैार
कैाशल की छटा लुभाई।
इकटक देखत रहत जगत
मोहित ह्वै सुधि बिसराई॥

होइ यवन पददलित सोइ सब
माटीही ह्वै जैहै।
चारहु दिसि मूढ़ता बेबसी
कछु दिन माहिं लखैहै॥

जा भारत प्रताप दिसि लख जग
चख चकचैांधी लागै।
हाय! कहा सो लुटिहै पद तर
सोचत ही बुधि भागै॥

ऐसे करत तर्क व्याकुल ह्वै
कंठ रुद्ध ह्वै आयो।
चल काफ़िर क्या रोता है
इक यवन ढकेलि सुनायो॥

गिरत सम्हारि सचेत होइ कर-
जोरि जननि पग लागी।
देश बन्धु दिसि हेरि बचन
बोले भारत रसपागी॥

भैया! मैया दै मलेक्ष कर
हम तै जात बिदेसा।
तुम रच्छा करिहैा जहँ लैां बस
होइ न याहि कलेसा॥

जद्यपि पराधीन भए पै जै
आत्मपनैा न बिसरिहैा।
धर्म, ऐक्य, विद्या अनुसरिहैा
तैा अरि सीस बिहरिहैा॥

जैसे भई दसा यह सो तुम
निज नैनन हिं निहारैा।
दूर बहाइ खोर सो इक ह्वै
भारत मातु उबारैा॥

जिनि भूलैा निज पुरुषन के
गैारव की भ्रात कहानी।
सिमिटि शत्रु बल मेटि उबारैा
भारत भुव सुख खानी॥

सुनत बचन ये म्लेक्ष सैन चहुं
दिसि सों गरजन लाली।
मुसुक बांधि भारत गैारव कों
भारत सों लै भागी॥

चिर स्वतंत्रता चिर गैारव चिर
सुख छन मांहि बिलाई।
बँधि-चिर-दिन दासत्व-शृङ्खला,
भारत भुव बिलखाई॥

दीन बन्धु निज बिरद सम्हारैा
दीन दुखित दुख हारैा।
हे भारत भुवनाथ हाथ गहि
भारत भूमि उबारैा॥

ज्ञान

कपिलमुनि कृत सांख्य शास्त्र के अनुसार—ज्ञानही से अपवर्ग की प्राप्ति होती है। यह मत सांख्यकार ही का नहीं किन्तु प्रायः सभी दर्शनों का है। धूमयान, तड़िद्यन्त्र, सूक्ष्मदर्शकयन्त्र इत्यादि समस्त अघटित घटना ज्ञान ही के विजृम्भण का फल है। यह लैाकिक वार्ता हुई। पारलैाकिक विषय में, ज्ञान से जब निःश्रेयस तक की सिद्धि संभव है, तब ईश्वर का अस्तित्व अथवा अनस्तित्व आदि प्रमाणित करना ज्ञान साध्य समझने में कोई आपत्ति नहीं। अतः ज्ञान के विषय में हम कुछ कहना चाहते हैं।

२—जो कुछ हम जानते हैं वही ज्ञान है। परन्तु जानने के कई प्रकार हैं। पृथक् पृथक् आचार्य्यों ने इन जानने के प्रकारों की पृथक् पृथक् संख्या नियमित की है, जिनमें तीन मुख्य हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। शेष प्रकार इन्हीं तीनों के अन्तर्भूत समझने चाहिए।

३—नदी, पर्वत, गृह, वाटिका, सरोवर इत्यादि को हम नेत्र से देखते हैं। अतएव इन ज्ञातव्य विषयों के साथ चक्षुरिन्द्रिय का संयोग होने से हमको यह ज्ञान होता है कि यह सरोवर है, यह नदी है, यह पर्वत है, इत्यादि। इस प्रकार के ज्ञान को चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते हैं। यदि किसी मनुष्य से, जिसे सरोवर का ज्ञान हुआ है, पूछें कि तुमको क्या ज्ञान हुआ, तो सहस्रशः प्रयत्न करने पर भी सरोवर का नाम लिए बिना ज्ञान के आकार को वह कदापि स्पष्ट करके बतलाने में समर्थ न होगा। इससे यह विदित होता है कि ईश्वरीय संकेता-

नुसार जितने विषय हैं, उनमें से एक एक ने एक एक विशिष्ट ज्ञान के बांध सा लिया है।

इसी प्रकार, सायङ्काल, गृह में बैठे हुए अकस्मात् बहिरुद्यान में मयूर की उच्च केका के श्रवण करने से श्रावण प्रत्यक्ष होता है। तथैव वहीं, उद्यान में, कुसुमित कुन्द की सुवास आने से घ्राणज प्रत्यक्ष होता है। इसी भांति त्वाच और रासन प्रत्यक्ष भी जानने चाहिए। यह पांच प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान पंच ज्ञानेन्द्रिय—चक्षु, श्रवण, घ्राण, त्वचा और रसना—जन्य है। इसके अतिरिक्त मानस प्रत्यक्ष भी होता है, परन्तु मन अन्तरिन्द्रिय होने के कारण बहिर्विषयों के साथ उसका संयोग होना संभव नहीं; अतः अन्तर्ज्ञान-मात्र मानस प्रत्यक्ष के द्वारा होता है।

४—उपर्युक्त प्रकार का ज्ञान, ज्ञानकक्षा में तभी सन्निवेशित हो सकता है। जब वह सर्वतोभाव से शुद्ध हो। अशुद्धतादोषदूषित होने से संशय अथवा भ्रम में उसकी अतिव्याप्ति हो जाती है।

एक आधार में दो कोटियों का अवलम्बन करने से जो ज्ञान होता है, उसे संशय कहते हैं। यथा अन्धेरे में किसी ने किसी मनुष्य को देखकर यह विकल्प किया कि यह मनुष्य है अथवा वृक्ष? तो ऐसे स्थल में वह यथार्थ ज्ञान नहीं, किन्तु केवल संशय कहा जाता है। इसी प्रकार, जब किसी पदार्थ के विषय में और का और ही ज्ञान होता है, तब उसे भ्रम कहते हैं। यथा पीतल को सुवर्ण समझना इत्यादि। एतादृश संशयात्मक और भ्रमात्मक ज्ञान, विषयों का यथार्थत्व विदित होने से विनष्ट हो जाता है, परन्तु एक प्रकार का आहार्य ज्ञान, जो जान बूझकर होता है वह पदार्थों का निश्चय हो जाने पर भी बना रहता है। यथा नाट्यशाला में शकुन्तला और दुष्यन्त को अवलोकन कर, यथार्थ में यह जानने पर भी कि यह शकुन्तला और दुष्यन्त नहीं किन्तु कोई अन्य व्यक्ति उनके वेश में है, उस आहार्य ज्ञान का तिरोभाव नहीं होता।

५—दूसरे प्रकार का ज्ञान अनुमान ज्ञान कहलाता है। जब दो पदार्थों का नियत साहचर्य होता है, अर्थात् दोनों सदैव एकही साथ रहते हैं, तब एक पदार्थ को जानकर दूसरे का भी ज्ञान हो जाना अनुमान के नाम से अभिहित होता है। अपने घर का द्वार बन्द करके। भीतर बैठे हुए जब हम निकटस्थ वाटिकास्थित मयूर की गम्भीरध्वनि श्रवण करते हैं। तब हमको ध्वनि का कर्णद्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होता है; परन्तु मयूर का ज्ञान हमारे प्रत्यक्ष होने का विषय नहीं, कारण, उसे हम नेत्रेन्द्रिय द्वारा नहीं देख सकते। तब कहिए, हमने किस भांति जाना कि यह मयूर की ध्वनि है? अनुमान द्वारा; क्योंकि हमने इसके पूर्व बहुत बार देखा है कि एतादृशी ध्वनि मयूर ही के कंठ से निकलती है। इसी प्रकार, यदि, उस समय, अथवा समयान्तर में, हमको कुसुमित केतकी का सुवास मिले तो हम उस सुवास का घ्राणज प्रत्यक्ष करके यह अनुमान करेंगे कि खदिरादि को सुगन्धित करने के लिये, घर में, केतकी पुष्प कहीं अवश्य रक्खा है। इस स्थान पर सुवास का ज्ञान प्रत्यक्ष का विषय और केतकी के अस्तित्व का ज्ञान अनुमान का विषय हुआ।

उपर्युक्त अनुमानद्वय में मयूर और केतकी "साध्य" हैं; केका और सुगन्ध उसके साधन के "हेतु" हैं; वाटिका और घर, जिनमें हेतु द्वारा साध्य की सिद्धि की गई है, वे "पक्ष" हैं। इनके अतिरिक्त "सपक्ष," "व्याप्ति" और "परामर्श" भी तर्कशास्त्र के संज्ञाशब्द हैं; परन्तु इनके विवरण की यहां आवश्यकता नहीं।

६—इस विस्तृत विश्व में इतने विषय हैं कि अल्पजीवी और अदूरदर्शी अल्पज्ञ मानव ज्ञानेन्द्रिय द्वारा कदापि उन सबका प्रत्यक्ष करने में समर्थ नहीं हो सकता। जैसे एक मनुष्य समस्त वस्तुजात को प्रत्यक्षीभूत नहीं कर सकता, वैसेही उसे अनुमान द्वारा भी नहीं जान सकता। अतः प्रत्यक्ष और अनुमान के बहिर्भूत एक प्रकार के ज्ञान-साधन की आवश्यकता शेष रहती है।

७–हमने कभी इंगलेण्ड यात्रा नहीं की; अतः हमने लण्डन नगर भी नहीं देखा और तदन्तर्गत पारलियामेण्ट का प्रचण्ड मंडप भी नहीं देखा; तो क्या हम स्वेज़ कनाल, लण्डन नगर और पारलियामेण्ट मंडप का कुछ भी वृत्त नहीं जान सकते? जान सकते हैं। विश्वसनीय और विद्वान् मनुष्य जो वहां गए हैं और जाकर उन स्थलों को अवलोकन करके पुस्तक द्वारा तत्तद्वर्णन उन्होंने प्रकाशित की हैं, उन वर्णनों को पाठ करके, तीन सहस्र मील की दूरी पर भारतवर्ष में बैठे बैठे, हमको उन उन विषयों का स्थूल ज्ञान होने में कोई व्यत्यय नहीं आता। ज्ञान-साधन के इस तीसरे प्रकार को "शब्द" कहते हैं।

८–जैसे दूसरों के प्रत्यक्ष किए गए विषयों का उनकी लिखी हुई पुस्तकों के द्वारा हमको ज्ञान होता है, वैसेही दूसरों के अनुमान किए गए विषयों का भी उसी भांति हमको ज्ञान होता है। यदि ऐसा न होता तो नाना प्रकार के आश्चर्यजनक शोध और घटनाएं जो हम इस समय देख रहे हैं, कदापि इस दशा को न प्राप्त होतीं, क्योंकि ऐसे अनेक विषय हैं, जिनके जानने के लिये एक व्यक्ति की विद्या, बुद्धि और अध्यवसाय बस नहीं। ऐसी दशा में एक विद्वान् अनुमानादिसाधन द्वारा जो सिद्ध करता है, वह पुस्तकस्थ करके औरों के विचार करने के लिये छोड़ जाता है। और विद्वान् उस लेख को समझ, उसके आगे ज्ञानार्जन करने का प्रयत्न करते हैं, और तदुपार्जन के साधनों का अवलम्बन करके उस मित ज्ञान को अधिकाधिक बढ़ाते जाते हैं। न्यूटन* ने पृथ्वी की माध्याकर्षण शक्ति का शोध करके ग्रन्थ द्वारा उस शोधज्ञान का वितरण समग्र भूमण्डल में किया, जिसकी सहायता से अपर विद्वानों ने अनेकानेक अन्य प्राकृतिक नियमों का भेद जाना, और नाना प्रकार के कलाकौशलादिक निर्म्माण किए; अथ च तद्द्वारा और भी अनेक विज्ञानविद्याओं की उन्नति की। न्यूटन के सिद्धान्तों का यदि वे लोग आदर न करते और यह कह कर उनको त्याज्य समझते कि जो कुछ हमने स्वयं नहीं देखा अथवा अनुमान द्वारा स्वयं प्रमाणित नहीं किया वह विश्वसनीय नहीं, तो विज्ञान विद्या इस उन्नतावस्था को कदापि न पहुंचती।

९–तर्कशास्त्र वाले ज्ञानसाधन के कारणीभूत प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द को प्रमाण नाम से उल्लेख करते हैं, क्योंकि विषयों का अस्तित्व प्रमाणित किए जाने पर तदनन्तर इन्द्रियों को तदाकार वृत्ति प्राप्त होती है। शब्दप्रमाण को योरप के तत्ववेत्ता पृथक् प्रमाण नहीं मानते; परन्तु हम स्वदेशीय दर्शनशास्त्रसम्मत विषय को लिखते हैं, अतः

---

* न्यूटन का नाम इस स्थल पर हमने इस कारण से दिया है कि इस समय जिस स्कूल अथवा कालिज के विद्यार्थी से यह प्रश्न किया जाता है कि भूमि की आकर्षणशक्ति का प्रथमतः ज्ञान किसने प्राप्त किया, तो वह तत्काल न्यूटन का नाम लेता है, क्योंकि पाठशालाओं में प्रचलित पुस्तकें न्यूटन की प्रशंसा से पूरित हैं और इस शक्ति को आदि में इन्हीं महात्मा ने जाना यह ठौर ठौर पर उनमें लिखा है। विद्यार्थीजनों का इसमें क्या अपराध? जैसी उनको शिक्षा मिली है वैसाही उनमें उसका फल भी फलित हुआ है। उनसे यदि यह कहें कि इस विषय में न्यूटन का नाम ग्रहण करना भूल है तो वे इसे शतशः प्रमाण देने पर भी कठिनता से मानेंगे।

अतएव उदाहरणार्थ हमको भी न्यूटन ही का आश्रय लेना पड़ा। तथापि हम यह अवश्य लिखना चाहते हैं कि न्यूटन नहीं किन्तु हमारे भास्कराचार्य ने भूमि की आकर्षणशक्ति को पहिले पहिल जाना था। न्यूटन सन् १६४२ में उत्पन्न हुआ। भास्कराचार्य सन् ११५० ई० के मध्य में हुए। इन्होंने अनुमान ५०० वर्ष न्यूटन के पहिले अपने गोलाध्याय ग्रन्थ के भुवनकोश नामक अध्याय में लिखा है—

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समान्तात् क्व पतत्वियं खे?

भावार्थ—पृथ्वी में एक प्रकार की आकर्षणशक्ति है जिसके बल से वह आकाशस्थित जड़ पदार्थों को अपनी ओर खींच लेती है, इसीसे वे पदार्थ गिरते से हैं, ऐसा बोध होता है। समतल आकाश में पृथ्वी कहां गिरेगी?

योरोपीय दर्शन की कोटियों के खण्डन मण्डन का विचार करना सामयिक नहीं समझते। फिर उन लोगों ने एक एक विषय को इतना गहन और विस्तृत लिखा है कि पहिले उसका यथार्थतया समझना ही कठिन है, और यदि यथा-कथञ्चित् समझा भी तो तादृश बुद्धिवैभव और विद्वत्ता उपार्जन किए बिना उनके लेखों पर टिप्पणी करते बैठना हमारा सम्मत नहीं।

१०—शब्द प्रमाण का लक्षण हमारे यहां कपिल और गौतम तथा प्रायः सभी ऋषियों ने इस प्रकार लिखा है–

आप्तोपदेशः शब्दः।

अर्थात् आप्त के उपदेश को शब्द कहते हैं। अब यह प्रश्न उद्भूत होता है कि आप्त किसे कहते हैं। आप्त का भी लक्षण सबने एकही लिखा है। जो प्रामाणित और विश्वासपात्र है तथा जो आकांक्षा, योग्यता और सन्निद्धि के नियमानुसार सार्थक सम्भाषण करता है उसे दर्शनशास्त्र के आचार्य्यों ने आप्त नाम से अभिहित किया है। "चींटी ने हाथी को निगल लिया" इस प्रकार के असम्बद्ध प्रलाप जो नहीं करता, अथ च "हूं मैं पाठ गीता करता आज" इस प्रकार के दूषित वाक्य जो नहीं बोलता, और जो समाज की दृष्टि में विश्वसनीय है उसीका वाक्य "शब्द" कहा जा सकता है और उसीका उपदेश अथवा सिद्धान्त माननीय हो सकता है। ऐसे ही पुरुष जो कुछ लिखते हैं अथवा कहते हैं वह प्रत्यक्ष और अनुमान से पृथक् ज्ञानोपार्जन का एक तीसरा प्रकार समझा जाता है।

११—आप्तोपदेश के विषय में हमारे यहां बड़ा गड़बड़ है। वेद, उपनिषत्, दर्शन और धर्मशास्त्र में जो कुछ लिखा है सभी मान्य माना जाता है, चाहै उनमें लिखे हुए नियमों के अनुसार मनुष्य व्यवहार करै अथवा न करै और कृत सिद्धान्तों को सत्य समझै अथवा न समझै। इससे अनेक अनिष्ट उत्पन्न होते हैं और समाज में नाना प्रकार की कुत्सित परिपाटियों को उठा देने में अनेक आपत्तियां आती हैं।

१२—किस ग्रन्थकार की आज्ञा माननी और किसकी न माननी चाहिए इसकी मीमांसा करना अति कठिन है। स्थूलतया देखने से प्राचीन ऋषि, जिन्होंने उपनिषत्, दर्शन और धर्मविधायक ग्रन्थ लिखे हैं, सभी विश्वासपात्र कहे जाने के योग्य हैं। इन्होंने अपने काम के लिये कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। यदि कीर्त्ति के निमित्त ग्रन्थरचना की, ऐसा कहैं, तो भी कुछ हानि नहीं; क्योंकि यशः प्राप्ति के लिये एतादृश विषयों पर पुस्तक लिखने में असत्य का अवलम्बन करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। फिर, इन ऋषियों को "सत्यधन" "तपोधन" इत्यादि विशेषण दिए जाते थे, जिससे विदित होता है कि ये परम धर्मनिष्ठ और सत्यवादी थे। अतः मनुष्य मात्र के उपकारार्थ जो कुछ इन्होंने लिखा है, उस पर अविश्वास करना मूर्खता है। यह यथार्थ है, तथापि ईश्वर के अतिरिक्त अल्पबुद्धि मनुष्य कदापि सर्वज्ञ नहीं कहा जा सकता। ये ऋषि भी मनुष्य ही थे, महाज्ञानी थे, विशेष बुद्धिमान थे; परम प्रतिभावान् थे; यह हमने माना; परन्तु ईश्वरवत् सर्वज्ञ थे, यह कहना अवश्य अत्युक्ति कही जायगी। अतएव सम्भव है कि इनके भी ग्रन्थों में यत्र कुत्र भ्रम रह गया हो।

१३—जितने विज्ञान विषय हैं, उनके भ्रम का संशोधन उन विषयों में पारदर्शी होकर नूतन शोधद्वारा विद्वद्जन कर सकते हैं। यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। इस समय प्रोफ़ेसर बोस ने "तड़िल्लहरी"* नामक एक विज्ञान को सिद्ध करके उसका अस्तित्व प्रमाणित किया है। यदि कालान्तर में उनका सिद्धान्त अन्य विद्वानों द्वारा अन्यथा प्रमाणित हो जायगा तो हमको उसपर अविश्वास करने में कोई अनौचित्य नहीं। माध्याकर्षण विषयक न्यूटन का मत सभी विद्वज्जन

* Elecrtic waves.

मान्य करते हैं; परन्तु प्रकाश विषयक उसके मत को न मान कर फ़्रेनेल का सिद्धान्त शिरोधार्य्य करते हैं; क्योंकि उसने प्रमाणित करके बताया है कि न्यूटन का मत इस विषय में ठीक नहीं। इससे यह व्यक्त होता है कि विज्ञान विषय में एक व्यक्ति का एक मत यथार्थ और अन्यमत अयथार्थ हो सकता है; परन्तु अयथार्थ मत पर अविश्वास तब तक नहीं प्रकट किया जाता, जब तक कोई अन्य तत्ववेत्ता विद्वान् उसे भ्रमात्मक न सिद्ध कर दिखावें। इस नियमानुसार पतञ्जलि-मुनि ने योग साधन द्वारा ईश्वर का ज्ञान* होना लिखा है, जिसका खण्डन तब तक नहीं हो सकता जब तक कोई अन्य महात्मा योग सिद्धि से यह प्रमाणित न कर देवै कि ईश्वर का ज्ञान उस अवस्था को पहुंचने पर भी नहीं होता। पतञ्जलि स्वयं योगी थे और उन्होंने जो कुछ लिखा है अनुभव करके लिखा है, अतः उनके वाक्यों को आप्तोपदेश मानना और उनपर विश्वास करना सर्वथैव उचित है।

१४—उपर्युक्त प्रतिपादन से यह सिद्ध हुआ कि दार्शनिक और वैज्ञानिक सिद्धान्तों का जब तक सप्रमाण खण्डन नहीं किया गया तब तक उन्हें न मानना और उनके आविष्करण करने वालों को असत्यवादी अथवा भ्रमिष्ट कहना किसी प्रकार युक्तियुक्त नहीं। अब हमको यहां पर अपने स्मृतिग्रन्थों के विषय में कुछ कहना है, क्योंकि वे भी आप्तवाक्य की गणना के अन्तर्गत समझे जाते हैं।

१५—जितने प्रकार की विधि निर्धारित होती हैं, देश, काल, जन समाज की अवस्था और उसके कल्याण का विचार करके निर्धारित होती हैं। अपने देश में पहिले सभी शस्त्रधारण कर सकते थे, परन्तु ऐसा होने से अनेक उपद्रव उद्भूत होते देख गवर्नमेण्ट ने उस विधि का खण्डन कर एक नूतन विधि द्वारा शस्त्रधारण का निषेध कर दिया। इसी प्रकार, पहले पति पत्नी समागम में पत्नी के वय का विचार न किया जाता था, परन्तु कारणवशात् अब एक नियम इस विषय का भी गवर्नमेण्ट को प्रचलित करना पड़ा है। हमारे मनु और याज्ञवल्क्य ने जो संहिता बनाई हैं, उनकी रचना भी इसी प्रकार समाज की आवश्यकतानुसार की गई है। इन ग्रन्थों को बने सहस्रशः वर्ष हो गए, अतएव सर्वथैव असम्भव जान पड़ता है कि तत्कालीन अवस्था और आवश्यकतानुसार जो समस्त नियम उस समय स्थिर किए गए थे, वे अब इस समय भी आवश्यक समझे जावें; क्योंकि काल और देशपरत्व के कारण सारे नियम सदैव उपयोगी नहीं हो सकते। यदि ऐसा न होता तो गवरनर जनरल को प्रतिवर्ष नए नए ऐक्ट कदापि न "पास" करने पड़ते और पिनल-कोड की धाराओं में वारम्बार परिवर्तन करने का भी कदापि क्लेश न उठाना पड़ता।

मनु अथवा याज्ञवल्क्य अथवा और स्मृतिकारों ने जो नियम स्थिर किए हैं उनका सर्वतोभाव से परिपालन इस समय नहीं हो सकता, क्योंकि समाज के आचार विचार और व्यवहार में अब आकाश पाताल का अन्तर हो गया है। इन स्मृतियों में कहे गए नियमों का प्रतिदिन ही उल्लंघन होता है, परन्तु बड़े बड़े विद्वान् और माननीय गृहस्थ यह कहते संकोच करते हैं कि उनमें परिवर्तन की आवश्यकता है। जहांतक उनकी दिनचर्य्या का आधार, समयानुसार बनी हुई अतएव अनेक विषयों में परस्पर विरोधी स्मृतियों में मिलता है, तहां तक वे उसे सशास्त्र कहते हैं; परन्तु जब नहीं मिलता तब उनको रूढ़ि का अवलम्बन करना पड़ता है।

स्मृतियों की गणना धर्म्मशास्त्र में है। "सरस्वती" का नियम है कि ऐसे लेख जिनका

* ततः प्रत्यक्चेतनाऽधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। योगदर्शन प्रथमपद, २९ सूत्र— अर्थात् तब परमेश्वर का ज्ञान होता है और नानाप्रकार के विघ्नों का नाश भी हो जाता है।

वर्तमानकालिक धर्म्मविषयों से सम्बन्ध है, उसमें नहीं छप सकते। अतएव स्मृतियों के किस प्रकार के वचन इस समय के अनुकूल हैं और किस प्रकार के वचन प्रतिकूल हैं, इसका विवरण हम यहां पर नहीं कर सकते।

१६–यहां तक जो कुछ लिखागया उससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान तीन प्रकार का है—प्रत्यक्ष, अनुमान और शाब्द। विश्वसनीय और प्रामाणिक पुरुषों के कथन से जो ज्ञान होता है उसीको शाब्दज्ञान कह सकते हैं। ऐसे पुरुषों में वे सब गुण, जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है, होने चाहिए, और उनका कथन देश, काल और सामाजिक व्यवस्था के प्रतिकूल न होना चाहिए।

पण्डित लल्लू लाल कवि

(हिन्दी-गद्य के जन्मदाता)

आज दिन जो हिन्दी भाषा नवयौवना कामिनी की भांति अपने नए नए रूप रङ्ग के उमङ्ग में अपनी मनोहर छटा दिखलाती हुई हृदयवानों के चित्त को बलात् अपनी ओर आकर्षित कर रही है, उसके जन्मदाता स्वर्गीय महात्मा लल्लू लाल जी हुए।

ये गुजराती औदीच्य ब्राह्मण थे और आगरे के महल्ले बलका की वस्ती (गोकुलपुरा) में रहते थे। इनके पिता का नाम चैनसुख जी था, ये बड़े दरिद्र थे और पुरोहिताई का काम किया करते थे।

संवत १८२०–२२ वैक्रमीय के लगभग* इनका जन्म हुआ, और ये संस्कृत फारसी और ब्रजभाषा पढ़ने लगे। जब संवत १८४० में इनके पिता का देहान्त हो गया और इन्हें पौरोहित्य कर्म में रुचि न हुई और दरिद्रता अधिक सताने लगी, तब ये जीविका के लिये घूमते फिरते संवत् १८४३ में वङ्गदेश (मुर्शिदाबाद) में गए। वहां पर कृपा सखी के शिष्य गोस्वामी गोपालदास से इनसे परिचय हुआ और फिर तो इनके सत्संग से गोस्वामी जी ऐसे मोहित हुए कि उन्होंने मुर्शिदाबाद के नवाब मुबारकुद्दौला से इनकी भेंट कराई। और नवाब भी इनके गुणों से रीझ कर इनपर बहुत प्रसन्न हुए। फिर तो गोस्वामी गोपालदास और नवाब मुबारकुद्दोला के आग्रह से सात वर्ष तक ये मुर्शिदाबाद ही में रह गए और इनकी जीविका का भी भली भांति निर्वाह होता रहा। परन्तु संवत् १८५० में गोस्वामी गोपालदास के मरने से ये ऐसे उदास हुए कि नवाब से हठपूर्वक विदा होकर कलकत्ते गए और बावन लक्खो श्रीमती रानी भवानी* के पुत्र राजा रामकृष्ण से परिचय होने पर उन्हींके आश्रय में कलकत्ते में रहने लगे। यहां पर यह भी जान लेना आवश्यक है कि इनकी स्त्री भी इनके साथ थीं क्योंकि दम्पति में बड़ा प्रणय था।

कलकत्ते के बाबू लोगों ने प्रगट में तो लल्लू लाल जी का बड़ा आदर किया पर कुछ सहायता उन्हें न दी, इस बात को स्वयं लल्लू लाल जी लिखते हैं–"उन्होंके थोथे शिष्टाचार में जो कुछ वहां से लाया था, बैठ कर खाया"। इसके अनन्तर कई वर्ष तक उन्हें जीविका का कष्ट बना रहा और मुर्शिदाबाद के छोड़ने और नवाब के आग्रह की उपेक्षा करने का अब उन्हें परिणाम देख पड़ा। पर फिर भी वे इतने दृढ़ और आत्माभिमानी थे कि कई वर्ष तक कष्ट पाने पर भी स्वतः प्रवृत्त होकर मुर्शिदाबाद के नवाब की शरण न गए।

निदान तीन वर्ष तक घोर अर्थकष्ट को भोग कर सम्वत् १८५३ में ये जीविका का अनुसन्धान करते हुए श्रीजगदीश पुरी तक गए और जगदीश्वर (जगन्नाथ) की स्तुति के समय जो इन्होंने स्वयं बना कर निवेंदाष्टक पढ़ा था उसका पहिला दोहा यह है–

* क्योंकि इनके जन्मके संवत् का पक्का पता नहीं लगता।

* रानी भवनी का वृत्तान्त राजा शिवप्रसाद ने अपने गुटके में लिखा है।

"विश्वम्भर बनि फिरत हौ, भले बने महराज।
हमरी ओर निहारि कै, लखौ आपुनो काज॥"

निदान उनके दैन्यप्रलाप को जगदीश्वर ने सुना और नागपुर के राजा मनियां बाबू, जो उस समय जगन्नाथ दर्शन को आए थे, और जगदीश के मन्दिर में खड़े खड़े इनके अनर्गल अश्रुप्रवाह के साथ करुणोत्पादक निर्वेदाष्टक को सुन रहे थे, इनपर बहुत दयार्द्र हुए और इन्हें अपने साथ नागपुर चलने के लिये आग्रह करने लगे। परन्तु लल्लू लाल जी के ग्रह ऐसे प्रतिकूल थे कि ये राजा साहब के साथ नागपुर चलने में सम्मत न हुए और फिर कलकत्ते ही लौटने का विचार करने लगे। जब राजासाहब ने इनकी रुचि कलकत्ते ही जाने की देखी तो सौ रुपए से इनका सत्कार किया और कलकत्ते के पादरी बुनर साहब के नाम अनुरोध पत्र भी लिख दिया।

निदान जगदीशपुरी से लौटकर जब ये कलकत्ते आए तो दीवान काशीनाथ* के यहां ठहरे और पादरी बुनर साहब से भेंट की। उस समय न तो अंग्रेज़ी का इतना प्रचार था और न लल्लू लाल जी अच्छे विद्वान् ही थे, थोड़ी सी टूटी फूटी अंग्रेज़ी, थोड़ी बहुत संस्कृत और अच्छी तरह से व्रजभाषा तथा गुजराती जानते थे; अतएव पादरी साहब ने पहिली ही भेंट में इनके पाण्डित्य को जानलिया, तिसपर भी इन्हें आशा दी कि—"अपने भरसक हम तुम्हारी सहायता करेंगे"।

फिर दीवान काशीनाथ और पादरी बुनर साहब ने लल्लू लाल जी का परिचय डाक्टर रसल साहब से कराया और रसल साहब ने बड़े आदर के साथ इन्हें ईष्ट इंडिया कम्पनी के उच्चाधिकारी श्रीमान डाक्टर गिलक्रिरिस्त साहब से मिलाया और गिलक्रिरिस्त साहब की भेंट ही लल्लू लाल जी के विख्यात होने और दिन फेरने में प्रधान कारण हुई।

निदान डाक्टर गिलक्रिरिस्त साहब ने हिन्दी गद्य में ग्रन्थ बनाने के लिये लल्लू लाल जी को उत्साहित किया और अर्थ साहाय्य के अतिरिक्त मज़हर अलीख़ां विला, और मिरज़ा क़ाज़म अली ज़ुवां नाम के दो सहायक लेखक दिए। तब लल्लू लाल जी ने पूर्ण परिश्रम करके एक वर्ष में (संवत १८५७, सन् १८०४ ई०) निम्नलिखित चार ग्रन्थ लिखे।

१–सिंहासन बत्तीसी–सुन्दरदास कृत व्रजभाषा ग्रन्थ का खड़ी बोली में अनुवाद।

२–बैतालपचीसी–इस ग्रन्थ को शिवदास कवि कृत संस्कृत पुस्तक से शूरन मिश्र ने व्रजभाषा में किया और इसी व्रजभाषा से लल्लू लाल जी ने खड़ी बोली में अनुवाद किया।

३–शकुन्तला नाटक–संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद।

४–माधोनल–मधवानल नामक संस्कृत पुस्तक संवत १५८७ की लिखी हुई अभी तक बंगाल एशियाटिक सोसाइटी में रक्खी है, इसीका लल्लू लाल जी ने हिन्दी अनुवाद किया।

यह सब तो हुआ, पर लल्लू लाल जी की वास्तविक उन्नति का जो मूल कारण हुआ, वह हम नीचे लिखते हैं।

आगरे के तैरने वाले प्रसिद्ध हैं, अतएव लल्लू लाल जी भी अच्छे तैराक थे। एक दिन तीसरे पहर ये कलकत्ते में गङ्गा तट पर टहल रहे थे कि इन्होंने एक अंगरेज़ को जल में डूबते हुए देखा। बस, चट ये कपड़े उतार और अपने प्राण को तुच्छ समझ जल में कूद पड़े और दोही गोते में अंग्रेज़ को बाहर तीर पर ले आए। वह अंग्रेज ईष्ट इण्डिया कम्पनी का एक उच्च कर्मचारी था, अतएव उसने अपने प्राण रक्षक लल्लू लाल की कृतज्ञता न भुलाई; इन्हें एक सहस्र रुपए नक़द दे कर एक छापाख़ाना करा दिया और कम्पनी से अनुरोध करके कलकत्ते के फ़ोर्ट-

* इन्हीं दीवान साहब के पौत्र बाबू दामोदरदास खत्री अब तक वर्त्तमान हैं जो कलकत्ते बड़े बाज़ार के संवलिया जी के मन्दिर के अधिष्ठाता हैं।

विलियम कालेज में ५०) रु० महीने की नौकरी भी दिलवाई। बस यही समय लल्लू लाल जी की उन्नति का प्रथम सोपान हुआ।

संवत १८५७, सन् १८०४ ई०, में ये फ़ोर्ट विलियम कालेज के अध्यापक हुए। फिर तो दिन दिन इनका सम्मान बढ़ने लगा। छापाखाना घर का था, बस इनके ग्रन्थ अधिकता के साथ छपने ग्रैार बिकने लगे। आत्मोन्नति के साथ साथ इनका उत्साह ग्रैार भी बढ़ा ग्रैार ग्रन्थ रचना की ग्रोर इनकी प्रवृत्ति बढ़ती गई।

लल्लूलाल जी ने जो संस्कृत प्रेस नामक अपना छापाखाना खोला था, उसमें ईष्ट इण्डिया कम्पनी ने बहुत कुछ ग्रर्थ साहाय्य दिया था। उसी छापेखाने में इनके ग्रन्थ छपने ग्रैार बिकने लगे। देखिए उस समय इनके ग्रन्थों की ग्रोर लोगों की इतनी रुचि थी कि इनकी छपवाई रामायण ३०), ४०), ५०) को ग्रैार इनका बनाया तथा छपवाया प्रेमसागर १५), २०), ३०) को बिकता था, पर समय के फेर से ग्रब वे सब ग्रन्थ टके टके हो गए हैं।

लल्लूलाल जी ने ग्रैार भी ग्रनेक ग्रन्थ लिखे—

५–माधवविलास–स्वरचित नाटक।

६–सभाविलास। ग्रहा! ऐसा कैान सा पाठ्यसंग्रह होगा जिसमें इसमें का विषय संगृहीत न हो! यह पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है। इसमें नाना-प्रकार की कविताग्रों का ग्रच्छा संग्रह है। इस संग्रह से लल्लूलाल जी ने मानो लोगों को संग्रह की एक ग्रद्भुत शैली दिखलादी। इसीकी छाया पर राजा शिवप्रसाद के गुटके ग्रादि ग्रनेक संग्रह बने हैं। पहिले यह पुस्तक पाठशालाग्रों में पढ़ाई भी जाती थी, पर ग्रब उठगई है।

७–प्रेमसागर। ग्राबाल-वृद्ध-बनिताग्रों में ऐसा कैान व्यक्ति होगा जिसने इस पुस्तक को देखा या स्कूलों में पढ़ा न हो? ग्राज दिन पाठशालीय संग्रहों में ऐसा कोई बिरलाही संग्रह होगा जिसमें इस (प्रेमसागर) का कुछ न कुछ ग्रंश न हो। सन् १५६७, संवत् १६२४, में चतुर्भुज दास ने व्रजभाषा में दोहे चैापाइयों में भागवत दशम स्कन्ध का ग्रनुवाद किया था उसीके ग्राश्रय पर लल्लूलाल जी ने यह ग्रन्थ रचा। यह ग्रन्थ सन् १८०९ तक नहीं छपा था, परन्तु ग्रब तो दहीं दही हो गया है।

८–राजनीति—यह ग्रन्थ संस्कृत के हितोपदेश नामक ग्रन्थ का व्रजभाषा में ग्रनुवाद है। इसे लल्लूलाल जी ने संवत् १८६९, सन् १८१२, ई० में बनाया था।

९–भाषा कायदा–ग्रर्थात् हिन्दी भाषा का व्याकरण। इसकी एक प्रति ग्रब तक बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी में रक्षित है। यह ग्रन्थ छप तो चुका था पर बहुतायत से प्रचलित न हुग्रा।

१०–लतायफ़ हिन्दी–हिन्दी, उर्दू ग्रैार ब्रज भाषा में सो कहानियों का संग्रह। यह उसी समय में लल्लूलाल जी ने "न्यू सैक्लोपीडिया हिन्दुस्तानी (New Cyclopædia Hindustani) के नाम से छापी थी।

११–लालचन्द्रिका। इस पुस्तक के विषय में साहित्याचार्य पण्डित ग्रम्बिकादत्त व्यास यों लिखते हैं—

"लल्लूलाल के ग्रन्थों में सबसे उत्तम 'लालचन्द्रिका' है, ग्रैार इसी ग्रन्थ से इनकी विद्या की सारगर्भिता प्रकट होती है। यह बिहारी सतसई के ग्राज़मशाही क्रम के ग्रनुसार उसी ग्रन्थ पर टीका है। यह ग्रन्थ पहिले पहिल लल्लूलाल ने स्वयं ग्रपने ही छापेख़ाने में सन् १८१९ ई० में छपवाया था" *।

* बिहारी बिहार में सा० चा० पं० अम्बिकादत्त व्यास ने जो लालचन्द्रिका पर आलोचना की है विस्तारभय से उसे हमने छोड़ दिया, क्योंकि यदि लालचन्द्रिका की आलोचना हम लिखते तो लल्लूलाल जी के समस्त प्राप्त ग्रन्थों पर आलोचना लिखनी पड़ती, परन्तु स्थानाभाव के कारण हम ऐसा न कर सके।

लल्लूलाल जी राधाबल्लभीय सम्प्रदाय के वैष्णव हों तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि इन्होंने श्रीकृष्ण चरित ही पर विशेष लिखा है और प्रायः अपने ग्रन्थों के आरम्भ में वैसा ही मङ्गलाचरण किया है जैसे लालचन्द्रिका के प्रारम्भ में "श्री राधाबल्लभो जयति" और समाप्ति में "श्री राधा-कृष्ण प्रसादात्संपूर्णम्" ॥

सन् १८२४ ई० में ये फ़ोर्टविलियम कालेज से पेन्शन लेकर अपने छापेखाने को नाव पर लाद आगरे आए और वृद्धावस्था के दिन सुख से काटने लगे।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि लल्लूलाल जी चार भाइयों में सबसे बड़े तो थे, और भाइयों को सन्तति हुई, पर इन्हें कोई सन्तान न हुआ।

कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि घर का बन्दोबस्त और छापाखाना खोल कर लल्लूलाल जी फिर कलकत्ते गए और वहीं मरे। परन्तु कब मरे, इस बात का पता नहीं लगता। हां, सन् १८२४ ई० तक उनका जीवित रहना निश्चित है।

वस्तुतः लल्लूलाल जी कुछ बड़े विद्वान् वा कवि न थे। यदि आज कल वे होते तो कदापि वे इतने यश के भागी न हो सकते, परन्तु जिस समय वे हुए थे, समय हिन्दी भाषा का अस्तित्व भी न था। इसलिये उन्होंने हिन्दी गद्य-प्रणाली का जन्मदान कर जो कुछ लिखा वही बहुत कुछ समझना चाहिए। बस, जब तक संसार में हिन्दी भाषा का अस्तित्व रहैगा इसके जन्मदाता और आदि कवि लल्लूलाल जी अमर बने रहेंगे।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने इनके विषय में बहुत उचित लिखा है कि—

"इसमें सन्देह नहीं कि लल्लूलाल जी ने हिन्दी गद्य लिखने का अपने भविष्यत् विद्वानों को पथ दिखला दिया और पूर्ण परिश्रम और विद्याभ्यास में जीवन व्यतीत किया और हिन्दी गद्य को उस समय सिंहासन पर बैठाया जिस समय गुर्जर भाषा और बङ्ग भाषा बालिका थीं। यदि उस समय से आजतक सुलेखक लोग हिन्दी की सेवा करते तो यह सारे भारत में चक्रवर्त्तिनी होती और ऐसा कदापि न होता कि उर्दू की पाताका उड़े और इसे कहीं स्थान न मिले। इस लिये हिन्दी भाषा के परमोन्नायक विद्वान् लल्लूलाल कवि को कोटिशः धन्यवाद देना यावत् हिन्दी के रसज्ञों का धर्म है।"

हम उपर्य्युक्त वाक्य में व्यास जी से पूर्ण सहमत हैं और समझते हैं कि लल्लूलाल जी की इस अद्भुत उपकारिता को समस्त हिन्दी के सुलेखक मुक्त कण्ठ से स्वीकार करेंगे। और यहां पर हम व्यास जी की आत्मा के लिये अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि इस जीवन चरित्र के लिखने में हमको उनके लेखसे (लल्लूलाल जी के ग्रन्थों के अतिरिक्त) विशेष साहाय्य मिला है।

होम डिपार्टमेंट—पबलिक—नंबर ५१०

विज्ञापन

स्थान कलकत्ता—ता० ५ फ़र्वरी सन् १९०१ ई०

श्रीमान् महाराजाधिराज और क़ैसर हिन्द की यह प्रसन्नता हुई है कि उन्होंने नि लिखित सन्देशपत्र हिन्दुस्तान के वालियान रेयासत तथा प्रजागण के नाम प्रेषित किया है

"हिन्दुस्तान के वालियान रेयासत और प्रजागण के नाम——

"हमारी प्यारी और परम शोचनीय माता के विलपित स्वर्गवास द्वारा हमें उत्तराधिकार में वह राजसिंहासन मिला है जो एक दीर्घ और प्राचीन वंशपरंपरा से होकर हमको प्राप्त हुआ। हमारी इस समय यह अभिलाषा है कि वालियान रेयासत तथा अपने हिन्दुस्तान के राज्य के निवासियों को अपनी ओर से सलाम भेजें और उनके कल्याण के निमित्त अपनी हार्दिक आकांक्षा का उन्हें निश्चय दिलावें। हमारी यशस्विनी और शोचनीय पूर्वाधिकारिणी इस देश की प्रथम महाराज्ञी थीं जिन्होंने हिन्दुस्तान के राजकार्यों का शासन स्वयं अपने ऊपर लिया तथा उस विस्तृत देश के राज्यशासन को ओर अपने अविरल सम्बन्ध की सूचक क़ैसराहिन्द की उपाधि स्वीकार किया॥

"हिन्दुस्तान से सम्बन्धित सम्पूर्ण विषयों में श्रीमती महाराज्ञी क़ैसराहिन्द अविकार्य्य गंभीर आत्मीय अनुराग प्रगट करती थीं और उनके राजसिंहासन तथा स्वयं उनके शरीर के प्रति हिन्दुस्तान की कोट्यानिकोटि प्रजा की ओर से सूचित राजभक्ति तथा प्रेम भाव से हम भली भांति अभिज्ञ हैं॥

"उक्त श्रीमती के दीर्घ और प्रतापी राज्य के अन्तिम वर्ष में दक्षिणी अफ्रिका के युद्ध में (हिन्दुस्तान के) वालियान रेयासत की ओर से समर्पित महती राज्यनिष्ठ सहायता द्वारा और (हिन्दुस्तान की) देशी सेना की ओर से अपने निज देश की सीमाओं के परे (देशान्तर में) की हुई पराक्रमी परिचर्याओं द्वारा यह (उपरोक्त प्रेमभक्ति) भाव सुस्पष्ट प्रकार से प्रदर्शित हुआ था॥

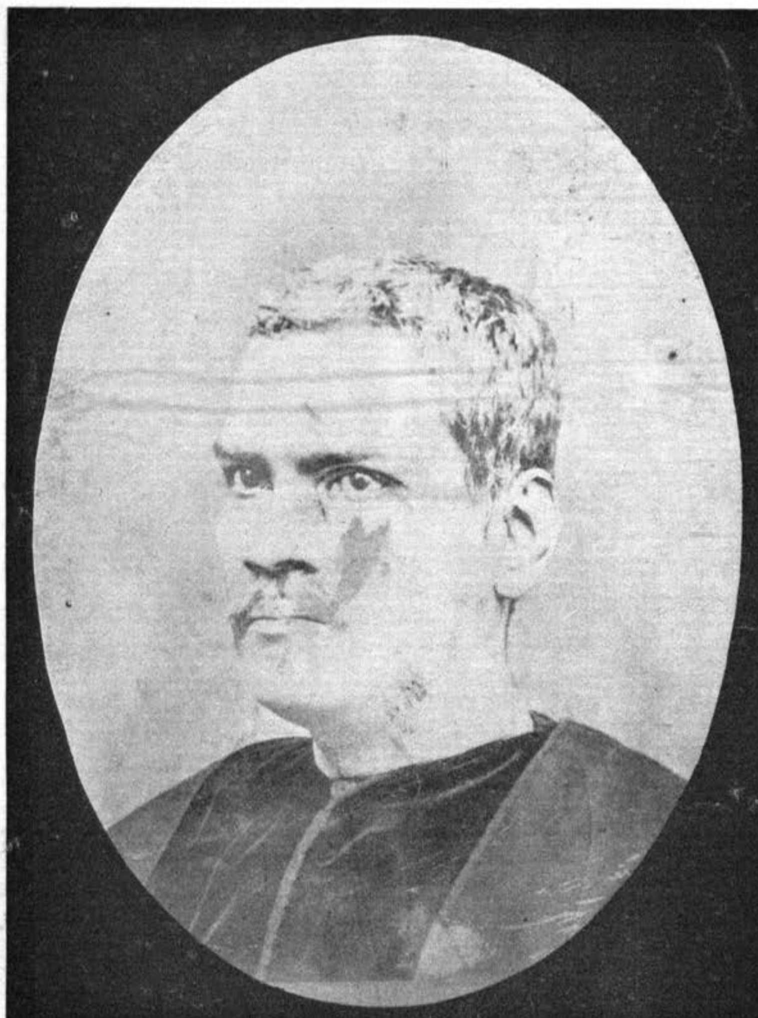
"उक्त श्रीमती ही की अभिलाषा के कारण तथा उन्हींकी अनुज्ञापूर्बक यह हुवा कि हम हिन्दुस्तान देखने आये और उस प्राचीन तथा प्रसिद्ध अधिराज्य के वालियान रेयासत प्रजागण तथा नगरों के विषय अपने को साक्षात् प्रकार से परिचित किया॥

"हम उन गम्भीर अनुभवों को जो हमको उस समय प्राप्त हुए कभी भी बिस्मरण न करेंगे और प्रथम महाराज्ञी क़ैसराहिन्द के प्रधान दृष्टान्त का अनुकरण करते हुवे उक्त श्रीमती के किये प्रकार अपने हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण प्रजावर्ग की सामान्य समृद्धि के लिये साधन करने का तथा उन लोगों की अक्षय राजभक्ति और प्रेमभाव के योग्य होने का उद्योग करेंगे॥

कोट विण्डसर
ता० ४ फ़र्वरी सन् १९०१ ई० } (हस्ताक्षर) एडवर्ड (आर) और (आई)"

हस्बुल हुकुम० जे. पी॰ हिवेट

गवर्नमेन्ट हिन्द का सेक्रिटरी



बाबू रामकाली चौधरी

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] मार्च १९०१ ई० [संख्या ३

त्रिजयिनी विलाप

अरे आजु चारहु दिसा
  छायो कहा विषाद ।
नर नारी व्याकुल फिरत
  पूरित आरतनाद ॥
श्याम ध्वजा फहरात क्यों
  जित तित लखियत आज ।
श्याम बसन धारन कियो
  क्यों सब राज समाज ॥
मुख मलीन अति छीन दुति
  क्यों सब लोग लखात ।
करिकै कृपा बताइए
  मेरो हिय अकुलात ॥
'कहा तुम्हें नहिं खबर' खबर
  अनरथ की आई ।
भारतेश्वरी बिजयिनि यह
  जग छाेड़ि सिधाई ॥
तोरि जगत सों नेह
  मोरि मुख जग के सुख सों ।
छोरि सबै धन धान्य
  बोरि जग सागर दुख सों ॥
बिमल कीर्ति फैलाइ,
  लोक करिकै यह निज बस ।
गई करन वह लोक विजय
  फैलावन निज जस ॥
मातृ हीन सब प्रजा वृन्द
  करि, जगत रूलाई ।
मातु विजयिनी हाय हाय
  सुरलोक सिधाई ॥
भई अनाथिनि दिग दिगन्त
  लौं पृथ्वी सारी ।
सब भूमण्डल आजु
  शोक की मूरति धारी ॥
हाय दया की मूर्ति
  हाय विकटुरिया माता ।
हा ! अनाथ भारत को दुख
  में आश्रय दाता ।
दीन करून धुनि यही
  चहुं दिसि गूंज रही है ।

उदासीनता महा बेबसी
बरसि रही है ॥
हैं हैं कहत कहा अरे
सांचहि फूटे भाग।
मातु विजयिनी ने कहा
छांड्यो सुत अनुराग॥
जासु दया पूरित हृदय
लखि जन मुखहि मलीन।
पघलि चलत हो धीर तजि
मेटन को दुख दीन॥
सो किमि गही कठोरता,
लखि निज प्रजा समाज।
दीन दुखी बिलखत, गई
कैसे तजिकै आज॥
निज के दुख तृन सम तजति
लखि कोउ प्रजा मलीन।
सो आश्वासन देत किन
सबहि प्रजा लखि दीन॥
अहह! दैव कीनी कहा
तोहि दया नहिं नेक।
क्यों तुम नित प्रति दीन कों
देत कलेस अनेक॥
तापैं भारत पैं कछू
तुम्हरो कोप बिसेख!
जबहि यासु कछु दिन फिरत
तबहिं सकत नहिं देख॥
बहु दिन के बहु दुःख सहि
जबहिं विजयिनी गोद।
हतभागी भारत लह्यो
जबहीं कछू हिय मोद॥
तबही तुम निर्दय दई
सुख की सो आधार।
हरि लीनी अनयास ही
बोरि दुःख मजधार।
क्यों तुम कों न्यायी कहत
क्यों दयालु तुव नाम।

न्याय रहित निर्दय अतिहि
तेरे सब ही काम॥
अथवा भारत के विषय
भूलत तुम निज बान।
भेद बताओ बेगिही
व्याकुल अतिसय प्रान॥
दीन दयाल दयानिधान हरि
भारत सों क्यों रूठे।
निज अपराध और पैं डारत
न्यायी भए अनूठे॥
बिनु तुव अनुशासन इक पातहुं
डोलि सकत नहिं प्यारे।
फिर क्यों ताको फल भोगत ये
भारत प्रजा बिचारे॥
कहो कौन के कहे महा-
भारत में सबहिं लराई।
भारत को निर्जीव कियो तुम
सबै भांति जदुराई॥
बचे बचाए कों प्रभासथल
आपुस मैं कटवाई।
हा हा! भारत कों अनाथ करि
आपहुं गए सिधाई॥
हा! कबहूं वे दिन फिर ह्वैहैं
वह समृद्धि सुख सोभा।
कै अब तरसि तरसि मसूसि कै
दिन जैहैं सह छोभा॥
कहां परीक्षित कहँ जनमेजय
कहँ विक्रम कहँ भोज।
नंद वंश कहँ चन्द्रगुप्त कहँ
हाय कहां वह ओज॥
काल बिबस जौ गए नृपति वे
तौ क्यों उनके बालक।
भए न उनके सम, काकी अज्ञा
उपजे कुल घालक॥
पृथीराज जयचन्द कासु
प्रेरणा सों बैर बढ़ाई।

आपुस में कटि मरे विदेशी
यवनहिं लियो बुलाई ॥
वाही दिन भारत स्वतंत्रता
जड़ में तेल पिलाई।
बैठे आप तमासा देखत,
फिरैं सबै बिलखाई ॥
मथि लीने सब सहज प्राकृतिक
गुण भारतबासिन के।
रहि गए सीठी छाछ सदृश ये
दर दर चुनते तिनके ॥
अकबर जहांगीर से शाहन कों
किन राज दिवायो।
होनहार दाराशिकोह कों
क्यों हाथी भड़कायो ॥
आपुस के झगड़े बढ़ाइ क्यों
कियो अराजक देशहिं।
दीन प्रजा दुख भार दुखित ह्वै
कहं लैां सहै कलेशहिं।
ऐसे मैं करि कृपा भेजि न्यायी
अंगरेजहिं राजा।
सूखत धान अमृत बरसा सी
कियो कछुक सुख साजा ॥
इतनो कसर कहो क्यों राखी
जासों सब दुख भाजत।
महरानी क्यों इतै आइ नहिं
भारत मांहि बिराजत ॥
निज नैननि लखि निज रैयत दुख
दया हृदय उपेजावति।
दारिद फलइ अविद्या दुख कों
भारत सों भगवावति ॥
भला सोऊ नहिं सही रहतिं
जीवित जो पै महरानी।
तऊ उतहि सों बैठि हरति दुख
बरसि सुधा सम बानी ॥
सोऊ सही गई नहिं तुमसों
तिनको हू हरि लीनो।

अहह ! दैव निर्दय तुम अतिसय
महा कष्ट यह दीनो ॥
तिरसठ बरस जासु छाया सुख
कीनो भारतबासी।
ताकों अनायास हरि लीनी
सब कछु आसा नासी ॥
रे बीसवीं सदी तेरो पैरो
कैसो जग आयो।
या बसुधा को अमलचन्द्र हरि
चहुं दिसि तम फैलायो ॥

जाको प्रताप छायो दिगंत।
जाके प्रताप बसुधा कपंत ॥
जो अबला कुल मैं जनम लीन।
अतिसय सबलन कों जेर कीन ॥
जाके प्रताप दिनकर डरात।
दिन रहत सदा नहिं होत रात ॥
जाको मुख ताकत अति ससंक।
महिपाल जगत के मनहुं रंक ॥
जाको प्रताप सागर तरङ्ग।
लै करत जगत मैं नाच रङ्ग ॥
फहरात विजय ध्वज अति उतङ्ग।
लखि लखि सब अरि हिय रहत दङ्ग ॥
अटि सकत न जासु प्रताप दाप।
जिमि हरि पद अरो न जगत नाप ॥
जल पियत सिंह अरु अजा साथ।
विद्युत ठाढ़ी जहं बांधि हाथ ॥
जा सम न और तिय सुनी कान।
जनमे न जगत नर जा समान ॥
जाकी न दया को कहूं अंत।
लहि जासु छांह सब सुख बसंत ॥
जो जीव मात्र पै करत प्रीत।
मनु निज कुटुम्ब सम सबै मीत ॥
सुनि जासु सुधासम मधुर बैन।
सब प्रजापुञ्ज अति लहत चैन ॥

अति कृपा प्रेम भरि जासु दीठ।
लखि, हरत प्रजा के दुखहिं नीठ॥
सो अमित गुननि की रासि मात।
हा हा! बिनु जीवन है लखात॥
तजि सबै दया अरु मोह हाय!
सुरलोक गई कैसे सिधाय॥
तजि अखिल भुवन सागर अगाध।
भुव तीन हाथ कीन्ही समाध॥
हा हा! यह दुख नहिं सह्यो जात।
चहुंओर यहै धुनि है सुनात॥
हा मातु! हाय हा मातु हाय!
तजि नेह कितै तू छिपी जाय॥
बोलत न हाय क्यों निठुर होय।
देखो न पुत्र तुव रहे रोय॥
कहं गई तुम्हारी दया माय।
किन लेत दुखित सुअ हिय लगाय॥
हा हा! बिधिना तुम भए बाम।
मैया ने प्रीति तजी ललाम॥
हैं सुने जगत बहु पूत ढीठ।
पै तजत न मैया प्रीति नीठ॥
करि अबस माय-सुत दिय छुड़ाय।
तो सों न निठुर बिधि कछु बसाय॥

यह मानी इक दिन अवसि जग मैं मरनो होय।
पैं निज स्वारथ हेतु लगि धीर धरत नहिं कोय॥
नहिं संसय इन नैं लह्यो पूर्ण आयु सुख पूर्ण।
पै निज स्वारथ कों सुमिरि होत हृदय अति चूर्ण॥
अस्तु—न कछु बस आपुनो भगवत इच्छा माहिं।
तासों करि संतोष अब यह मांगत प्रभु पाहिं॥
कीरति बिमल सदैव जगत मैं अविचल राजै।
परमातमा समीप पवित्रातमा बिराजै॥
रहै वंस मैं राज लच्छमी नित थिर होई।
रहै प्रजा नित सुखी दुखी जग होइ न कोई॥
तुव असीस या देस को दुख दारिद सबही बहै।
उन्नति गैारव सब पूर्व सम यह भारत फिर सों लहै॥

बाबू रामकाली चौधरी

इनका जन्म सन् १८२८ ई० के अक्तूबर महीने की २३वीं तारीख को कृष्णनगर (ज़िला नदिया) में मामा के घर हुआ। इनकी पितृभूमि नदिया ज़िले का ऊलाग्राम और पिता का नाम बाबू नवीनचन्द्र चौधरी था।

इनके पिता कलकत्ते में एक मर्चेण्ट आफ़िस में साधारण नैाकरी करते थे। किन्तु जब बालक रामकाली का केवल दस वर्ष का वयक्रम था उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। तदनन्तर उनकी विधवा पत्नी अपने एकमात्र शिशु (रामकाली) को लेकर काशीवासिनी हुईं।

काशी आकर वे बंगाली टोले में एक सम्बन्धी के यहां रहीं और उस सम्बन्धी ने भी उन दोनों मा बेटों की सब भांति से यथाशक्ति सहायता की। उसी सम्बन्धी ने बालक रामकाली को पहिले जयनारायन्स कालेज में पढ़ने बैठाया और फिर कुछ दिन पीछे उन्हें बनारस कालेज में भर्ती किया।

रामकाली बाबू की माता अपने पुत्र की चाल चलन पर पूरा ध्यान रखतीं और बराबर उन्हें अच्छी अच्छी शिक्षा दिया करती थीं। अएतव इनकी रुचि सुधरती और विद्या की ओर बराबर झुकती गई। इसका परिणाम यह हुआ कि ये जल्दी जल्दी स्कूल के माष्टरों को वशीभूत करते हुए पारितोषिक के सहित उच्च श्रेणी में क्रम क्रम से प्रवेश करने लगे।

इन्होंने प्रथम तीन वर्ष जूनियर स्कालरशिप और फिर तीन वर्ष सीनियर स्कालरशिप पाया। ये सीनियर के फर्स्ट डिपार्टमेण्ट तक पढ़े, क्योंकि उस समय बी. ए., एम्. ए. इत्यादि की परीक्षाएं प्रचलित नहीं हुई थीं और उस समय की अन्तिम पढ़ाई सीनियर तक ही थी।

ये छात्रावस्था के अनन्तर बनारस कालेज के प्रिन्सिपल जे. आर. व्यालेण्टाइन, एल्.एल्.डी.

महोदय के अनुरोध से सन् १८५० ई० बनारस के कमिश्नर रीड साहब से कानून पढ़ने लगे।

बाबू गोबिन्दचन्द्र सान्याल, जिनके पुत्र बाबू शरच्चन्द्र सान्याल आज कल मध्यप्रदेश के सिविल जज हैं, और बाबू रामकाली चौधरी ने बराबर साथ पढ़ा, और साथ ही परीक्षा भी दी थी। उस समय के लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर टामसन साहब से व्यालेण्टाइन साहब ने अनुरोध किया कि इन दोनों को कोई उत्तम स्थान दिया जाय। इस पर लाट साहब ने इन दोनों महाशयों को बुलाया तो सही, पर उस समय उनके अधीन कोई काम खाली न था, इसलिये उन्होंने इन दोनों महाशयों से आगरे की कचहरी में उर्दू शिरिस्ते का काम सीखने के लिये कहा।

जब बाबू रामकाली कोर्ट में काम करते थे उस समय (सन् १८५५ ई०) इन्होंने वहां के कलक्टर साहब के कहने से अंग्रेज़ी की छोटी छोटी पुस्तकों का अनुवाद उर्दू में किया, जो ग्रामीण पाठशालाओं में पढ़ाई जाने लगीं।

टामसन साहब के मरने पर सर जे. आर. कालविन साहब ने उन दोनों को यह कह कर जवाब दिया कि "गवर्नमेण्ट तुमलोगों को कोई काम न देगी, इसलिये तुम लोग आप अपना काम खोज लो"। यह सुनकर बाबू गोबिन्दचन्द्र ने तो अपने अनुसन्धान से छपरे ज़िले की दीवानी कचहरी में अनुवादक का काम पाया और बाबू रामकाली से आनरेबुल ड्रमन्ड साहब आगरे के ज़िलाधीश ने महियर के राजकुमार को ५०) रु० मासिक वेतन पर पढ़ाने के लिये कहा। इस पर इन्होंने एक वर्ष के लिये यह कार्य स्वीकार किया और बराबर ड्रमन्ड साहब के साथ दौरे में भी ये रहने लगे।

इसी अवसर में मैनपुरी की दीवानी कचहरी में, जहां पर कि कार्क्स साहब जज थे, अनुवादक की जगह जो कि नब्बे रुपये मासिक की थी, खाली हुई। बाबू रामकाली ने उसके लिये दरखास्त दी और वह मंज़ूर हुई। तब ये वहां काम करने लगे।

सन् १८५६ के मई के अन्त में गाज़ीपुर में सौ रुपए मासिक का एक स्थान खाली हुआ। यह सुन कर इन्होंने वहां के जज टी. सी. प्लाउडन साहब के पास दर्खास्त दी और उसकी मंजूरी होने पर ये वहां जाकर काम करने लगे।

ये बड़ी योग्यता के साथ प्लाउडन साहब के अधीन में अनुवादक का काम करने लगे। कुछ दिन पीछे प्लाउडन साहब एक वर्ष की छुट्टी लेकर विलायत गए और उनके स्थानापन्न होकर ए. रास साहब जज का काम करने लगे। वे बाबू रामकाली के काम से ऐसे प्रसन्न हुए कि अपने फ़ैसले में भी इनकी सलाह लेते और बराबर इनपर कृपा रखते थे।

इतने में बलवे की धूम चारो ओर से मचने लगी। उस समय गाज़ीपुर ज़िले में महमदाबाद की मुन्सिफ़ी खाली हुई और रास साहब ने कृपा कर के यह काम बाबू रामकाली को दिया। इस काम को इन्होंने ऐसी अच्छी रीति से चलाया कि रास साहब बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने इनके लिये सदर दीवानी अदालत से अनुरोध किया कि "यह बहुत योग्य कार्यकुशल व्यक्ति हैं, अतएव हमारी जमानत पर इन्हें वहां की मुन्सिफ़ी दी जाय"। इस पर सदर दीवानी से आज्ञा हुई कि "उन्हें परीक्षा देनी चाहिए"। तब परीक्षा लेने के लिये बनारस आदि चार ज़िलों के चार जजों की एक कमेटी हुई, उसमें बाबू रामकाली परीक्षा देकर पास हुए। हुए तो सही, पर उस समय बलवे के कारण महमदाबाद में बड़ा उपद्रव था; कई थाने के थानेदार मारे गए थे, इसलिये रास साहब ने इनसे कहा कि "अभी कुछ दिन तुम यहीं कचहरी करो। फिर गदर की शान्ति होने पर ये महमदाबाद में कचहरी करने लगे। उस समय ये तीसरे दर्जे के मुन्सिफ़ थे।

सन् १८५९ ई० में छुट्टी पूरी होने पर प्लाउडन साहब विलायत से आए। उन्होंने आकर बाबू राम-

काली के कामों की जांच करने पर इतनी प्रसन्नता प्रगट की कि अपनी रिपोर्ट में लिखा कि "यह व्यक्ति किसी समय में एक अनुभवी और योग्य हाकिम होगा"।

फिर सन् १८६१ में प्लाउडन साहब ने बलिया के उन मुन्सिफ़ों को निकाल कर, जो कि अंग्रेज़ी नहीं जानते थे, १५०) रु० मासिक वेतन पर इन्हें दूसरे दर्जे का मुन्सिफ़ बना कर वहां भेज दिया।

सन् १८६२ ई० में जजी के अफ़सरों के मासिक वेतन और दर्जे का नया नियम प्रचलित किया गया। उसके अनुसार प्रथम श्रेणी के मुन्सिफ़ का मासिक वेतन ४००), द्वितीय श्रेणी का ३००) और तृतीय श्रेणी का २००) निश्चित हुआ। इसके अनुसार तब से बाबू रामकाली को ३००) रु० मासिक मिलने लगे। उसी सन् में ये बलिया से अव्वल दर्जे के मुन्सिफ़ होकर इलाहाबाद बदल गए और ४००) रु० मासिक पाने लगे।

सन् १८७३ ई० में ये मिर्ज़ापुर के सदरआला हुए और ५००) रु० मासिक वेतन पाने लगे। वहां से इनकी बदली कानपुर को हुई और वहां ये ६००) से ८००) तक मासिक वेतन के अधिकारी हुए।

उस समय जस्टिस टर्नर इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज थे। वे बाबू रामकाली के फ़ैसले को बहुत पसन्द करते थे, यहां तक कि उन्होंने अपने पत्र में बाबू रामकाली को लिखा था कि "इधर आपके ३० फ़ैसलों की हाईकोर्ट में जो अपील हुई उसमें केवल आपके किए हुए तीन फैसलों में परिवर्त्तन हुआ"।

सन् १८७७-७८ के लगभग ये बनारस की अदालत ख़फ़ीफ़ा के जज नियत हो कर आए। फिर कुछ दिनों पीछे जौनपुर के सदरआला हुए। तदनन्तर इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर, इत्यादि ज़िलों में इनकी बदली होती रही और सन् १८८४ ई० में इन्होंने दीवानी विभाग की २५ वर्ष की नौकरी पूरी की, क्योंकि उस समय इनकी अवस्था भी ५५ वर्ष की हो चुकी थी।

उस समय हिन्दुस्तानी आदमी हाईकोर्ट का जज नहीं होता था। फिर विलायत से आज्ञा आई कि हिन्दुस्तानी आदमी भी जज बनाया जाय। इस आज्ञा के आने पर हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस स्टुअर्ट साहब ने तीन व्यक्तियों के नाम लिखे–

१–बाबू रामकाली चौधरी।

२–बाबू काशीनाथ विश्वास।

३–बाबू द्वारिकानाथ विश्वास।

परन्तु तीनों बंगाली ही थे, इसलिये गवर्नमेण्ट ने पश्चिमोत्तर और अवध प्रान्त में बंगाली को हाईकोर्ट की जजी देना उस समय उचित न समझा और बाबू रामकाली को इलाहाबाद की ख़फ़ीफ़ा अदालत की जजी ही दी गई। यह पद भी इनके पहिले किसी हिन्दुस्तानी को नहीं दिया गया था।

अप्रैल सन् १८८४ ई० में पेन्शन लेकर ये काशी में आकर रहने लगे और अपने जीवितकाल पर्य्यन्त सर्वसाधारण के हितकर कामों में दत्तचित्त रहे।

अनेक वर्ष तक ये बनारस के म्युनिसिपल कमिश्नर, ऑनरेरी मेजिस्ट्रेट और बोर्ड के वाइस चेयरमैन रहे। इसके अतिरिक्त बनारस में कांग्रेस होने से स्टांडिङ्-कांग्रेस कमेटी के ये आजन्म प्रेसीडेन्ट रहे और निम्नलिखित सभा सोसाइटियों के भी ये प्रेसीडेन्ट रहे।

(१) कारमाइकेल लाइब्रेरी–बनारस।

(२) बंगाली टोला असोसियेशन–बनारस।

(३) बंग साहित्यसमाज–बनारस।

(४) बंगाली टोला स्कूल–बनारस।

(५) एचीसन आर्फ़नेज–बनारस।

(६) टोटल एब्स्टिनेन्स सोसाइटी–बनारस।

इसके अतिरिक्त ये काशी की नागरीप्रचारिणी सभा के एक परम सुयोग्य और हिन्दीहितैषी

सभासद थे, और "नागरी मेमोरियल" के समय इन्होंने सभा की बहुत कुछ सेवा की थी। केवल यही नहीं, वरन् काशी में जो सर्वसाधारण का हितकारी कार्यारंभ होता, ये उन सबो कार्यों में उत्साह से अग्रसर होते और कार्य को हाथ में लेकर कभी पीछे नहीं हटते थे।

इनकी सुजनता, सहनशीलता, मिलनसारी, और सत्यप्रियता का उदाहरण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है कि 'ऐन्टी-कांग्रेस" के प्रधान मुखिया सर सैयद अहमद ने इनके बिषय में यों कहा था कि "He is an honest enemy."

सन् १८९३ ई० में ये प्रांतिक लेजिस्लेटिव काउंसिल के मेम्बर गवर्नमेण्ट की ओर से बनाए गए, पर कुछ दिन पीछे जब गठिया रोग से बहुत ही अशक्त हुए तब इन्हें काउंसिल की मेम्बरी छोड़नी पड़ी।

यद्यपि इनका धर्मबिश्वास सांख्य के "ईश्वरासिद्धेः" अर्थात् ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता, इसके अनुसार था, पर न तो वे पूरे नास्तिक थे और न किसी धर्म विशेष पर अपना द्वेष प्रगट करते थे।

ये प्रातःकाल कोसों तक पैदल भ्रमण करते और लकसे पर एक अच्छे बाग में सुन्दर बंगले में जो कि सन् १८८४ ई० में इनकी माता के मरने पर बनवाया गया था, रहते थे। इनकी सच्चरित्रता, सत्यभाषिता और सर्वप्रियता के जानने वालों की कमी बनारस में नहीं है। ये ऐसे अवसर पर चुप रह जाते जब कि मिथ्या बोलने का प्रयोजन पड़ता और समस्त दुर्व्यसनों से भी इन्होंने अपनेको मरण पर्य्यन्त बचाया।

हम ऊपर कह आए हैं कि इनका मत सांख्य के "ईश्वरासिद्धेः" के अनुकूल था, पर यह बात ये बराबर कहा करते थे कि लोग बिना समझे बूझे नास्तिक कह बैठते हैं, पर मैं बस्तुतः नास्तिक नहीं हूं, परन्तु ईश्वर का अस्तित्व मान लेने पर भी मेरी बुद्धि सांख्य के उस वाक्य से पूर्णतया सहमत है कि ईश्वर सिद्ध नहीं किया जा सकता। अस्तु उनके साथियों में कुछ थोड़े से महाशयों के नाम नीचे लिखे जाते हैं, जिनसे उनकी सहृदयता और सर्वगुण-प्रियता स्पष्ट प्रतीत होगी—

गोसांई शिवदत्त गिर, बाबू हरिनाथ मैत्र, मुन्शी रामकिशुन, बाबू राजचन्द्र सान्याल, बाबू नारायण सिंह स्वर्णकार, मुन्शी हरबंश लाल, बाबू अबिनाशी लाल, बाबू गिरीशचन्द्र दे, राजा शंभूनारायण सिंह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, मुन्शी माधो लाल।

इनके अतिरिक्त बनारस के सभी रईस और विद्वानों से इनसे अच्छी तरह हेलमेल था।

इनके तीन लड़के और दो लड़कियाँ हुईं, इनमें से बड़े पुत्र बाबू रामचन्द्र चौधरी, एम्. ए., एल्. एल्. बी., इटावे में दूसरे दर्जे के मुन्सिफ हैं, मध्यम पुत्र बाबू आनन्दकुमार चौधरी, एम्. ए., एल्. एल्. बी., वकील, आजमगढ़ में वकालत करते हैं, और छोटे पुत्र बाबू शरत्कुमार चौधरी आजकल गवर्नमेन्ट कालेज बनारस में पढ़ते हैं।

बाबू रामकाली चौधरी एक वर्ष से गठिया रोग से अशक्त और पीड़ित थे, और १६ अक्तूबर सन् १९०० ई० की रात को १० बजे परलोक सिधारे।

अहा! अब बाबू रामकाली संसार में नहीं हैं, पर उनकी कीर्त्ति चिरकाल तक उज्वल रहेगी। एक साधारण पितृहीन बालक बिना सहायता के क्योंकर पढ़ लिख कर उन्नततम अवस्था को पहुंच सकता है, रामकाली बाबू की जीवनी इसका उदाहरण है और बिभिन्न जाति, धर्म, समाज और देश के लोगों का भी मनुष्य क्योंकर प्रियपात्र हो सकता है, इस बात की भी साक्षी उनकी जीवनी है। अस्तु, अब इससे बढ़ कर बाबू रामकाली के भाग्य की सराहना और कर्त्तव्य की पूर्त्ति और क्या हो सकती है कि उन्होंने तीनों पुत्रों को योग्य विद्वान् और कर्मक्षम बना कर तथा बिपुल धन

उनके लिये छोड़कर संसार छोड़ा। जगदीश्वर उनकी अविनश्वर आत्मा को शान्ति दे और हमारे देश के लोग रामकाली बाबू सरीखे व्यक्तियों के उदाहरण को देखकर अपने को भी साधारण अवस्था से असाधारण पद पर पहुंचाने की चेष्टा करें।

यद्यपि रामकाली बाबू का सम्बन्ध काशी से ही अधिक रहा और यहीं उन्होंने अपने जीवन का बहुत काल बिताया, पर इसमें सन्देह नहीं है कि काशी में यदि कोई व्यक्ति साधारण प्रजा का मुखिया बना तो वह येही थे इनकी मृत्यु से जो स्थान खाली पड़ गया है उसकी पूर्त्ति अब लों नहीं हुई है और न होने की आशा है। ईश्वर हमारे देश के पढ़े लिखे धनाढ्य लोगों को ऐसी बुद्धि दे कि वे वास्तव में प्रजा के कृपापात्र बनकर उनका उपकार करसकें।

चन्द्रलोक

सरस्वती के गत वर्ष के अंकों में पाठकों ने चन्द्रलोक की यात्रा का वृत्तान्त तो पढ़ा होगा। वह उपन्यास की भांति एक कहानी थी। किन्तु आज हम पाठकगणों के बोध के हेतु चन्द्रलोक के उस यथार्थ वृत्तान्त को, जो आज तक वैज्ञानिकों को गणित और यंत्रों द्वारा विदित हुआ है और जो सब प्रकार से आश्चर्ययुक्त है, लिखते हैं।

हमारे शास्त्रकारों ने चन्द्रमा को केवल चन्द्र-देव ही नहीं कहा है, वरन् उसे लोक कह कर भी लिखा है; जिसका तात्पर्य्य यह है कि चन्द्रमा में भी एक सृष्टि है। आशा की जाती है कि यह बात शीघ्र ही सिद्ध हो जायगी। इसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे। इसके पहिले चन्द्रमा क्या है, हमसे वह कितनी दूर है, कितना बड़ा है, कितना गुरु है, उसकी कैसी गति है और वह वास्तव में किन किन वस्तुओं से बना है इस बात का लिखना आवश्यक है।

जिस प्रकार से बुद्ध, शुक्र, मङ्गल, वृहस्पति और शनि आदि ग्रह हमारे सूर्य्य के चारों ओर परिक्रमा करते रहते हैं, उसी प्रकार यह चन्द्रमा इस गोल पृथ्वी के चारो ओर घूमा करता है और सदैव घूमता रहेगा, अर्थात् यह कहा जा सकता है कि यह भी एक ग्रह है जो आकाश में पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के कारण उसकी परिक्रमा करता है। इस छोटे से लेख में यह लिखना कि चन्द्रमा क्योंकर इस भूगोल के चारों ओर घूमता है और आकाश में क्यों नहीं छटक जाता, उचित नहीं जान पड़ता।

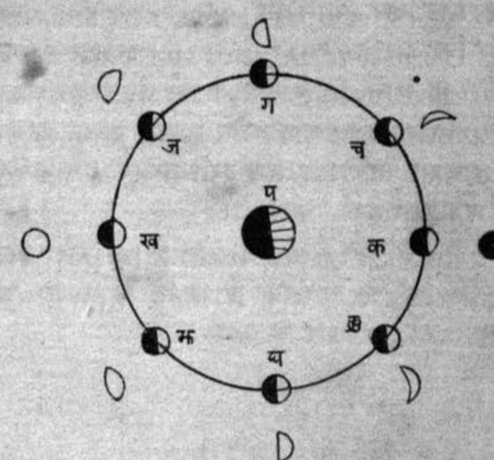
रात्रि के समय यद्यपि यह आस पास के तारे और ग्रहों की सेना में बहुत बड़ा और अधिक प्रकाशित देख पड़ता है, परन्तु वास्तव में यह तारों और ग्रहों से बहुत ही छोटा है। यह एक ठोस गोला है जिसका व्यास २१६० मील का है। पृथ्वी का व्यास इसके व्यास से लगभग ४ गुणा है अर्थात् चन्द्रमा इतना छोटा है कि यदि ४९ चन्द्रमाओं का एक गोला बनाया जाय तो वह इस पृथ्वी के बराबर होगा। पृथ्वी से निकट होने के कारण यह बड़ा दीख पड़ता है। इसका मार्ग दीर्घवृत्तीय है इसी कारण यह कभी पृथ्वी के समीप और कभी उससे दूर हो जाता है, पृथ्वी के केन्द्र से इसके केन्द्र की दूरी निकट होने पर २२५७१९ मील और दूर होने पर २५१९४७ मील होती है; इन दोनों दूरियों का भेद २६२२८ मील है, अर्थात् इसकी सरदल दूरी २३८७९३ मील है। इसी कारण से चन्द्रमा किसी पूर्णिमा को बड़ा और कभी छोटा दीख पड़ता है।

पृथ्वी की एक परिक्रमा करने में इसको २७ दिन ७ घन्टे ४३ मिनट और ११½ सेकेण्ड लगते हैं और यह पश्चिम से पूर्व की ओर घूमता है और पृथ्वी भी अपनी कीली पर पश्चिम से पूर्व को

ओर घूमती है, इसी कारण से हम भूगोल-वासियों को चन्द्रमा की एक परिक्रमा का समय २९ दिन १२ घण्टा ४४ मिनट का विदित होता है। इसकी तीन गति हैं-अर्थात् (१) पृथ्वी के चारो ओर घूमना, (२) सूर्य के चारो ओर इस पृथ्वी के साथ घूमना और (३) अपनी कीली पर दूसरे ग्रहों के समान घूमना। पर इस चन्द्रमा में यह विचित्रता है कि इसको अपनी कीली पर घूमने में भी उतना ही समय लगता है जितना कि पृथ्वी के चारो ओर चक्कर लगाने में, अर्थात् चन्द्रमा का रात और दिन हमारे २९½ दिनों के बराबर होता है।

पृथ्वी अपनी कीली पर लगभग २४ घण्टे में घूम जाती है और सूर्य के चारो ओर घूमने में उसे ३६५ दिन ६ घण्टे लगते हैं। पर हमारा चन्द्रमा २९½ दिन में पृथ्वी की परिक्रमा करता है और इसी समय में अपनी कीली पर फिर जाता है। इसी कारण से हमलोग उसके एकही ओर के भाग को सदैव देखते हैं, अर्थात् हमको चन्द्रमा में एकही प्रकार के चिन्ह सर्वदा दीख पड़ते हैं। पर वास्तव में हमलोग उसके अर्द्ध भाग से भी कुछ अधिक अंश को देखते हैं, जिसका यह कारण है कि इसकी कीली इसके मार्ग के धरातल से समकोण नहीं बनाती, वरन् १½ अंश झुकी रहती है। इसीसे कभी चन्द्रमा के ऊपर का और कभी नीचे का कुछ अंश देख पड़ता है और यह बात दूरवीक्षण-यन्त्र से स्पष्ट विदित होती है। अब यह प्रश्न हो सकता है कि चन्द्रमा कभी एक टेढ़ी लकीर सा, कभी आधा और कभी पूरा क्यों देख पड़ता है और कभी कभी इसमें ग्रहण क्यों लगता है? सुनिए, चन्द्रमा के घटने बढ़ने का कारण यह है कि यह एक अंधकारमय गोला है और स्वयं चमकने वाला नहीं है, वरन सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है।

अतएव अब यह बात स्पष्ट होगई कि चन्द्रमा का वही अर्द्ध भाग प्रकाशित होगा जो सूर्य्य की ओर होगा। अब यदि पृथ्वी भी चन्द्रमा के उसी ओर हो जिस ओर सूर्य्य है तो हमको उस (चन्द्रमा) का आधा चमकता हुआ भाग एक गोल चक्कर की नाईं वैसाही देख पड़ेगा जैसा कि हम पूर्णिमा को देखते हैं; और यदि पृथ्वी दूसरी ओर हो, अर्थात् चन्द्रमा बीच में हो तो हमको कुछ न देख पड़ेगा, क्योंकि हमारे सामने वही अर्द्ध भाग होगा जो सूर्य्य से प्रकाशित नहीं है। यह अमावास्या हुई।

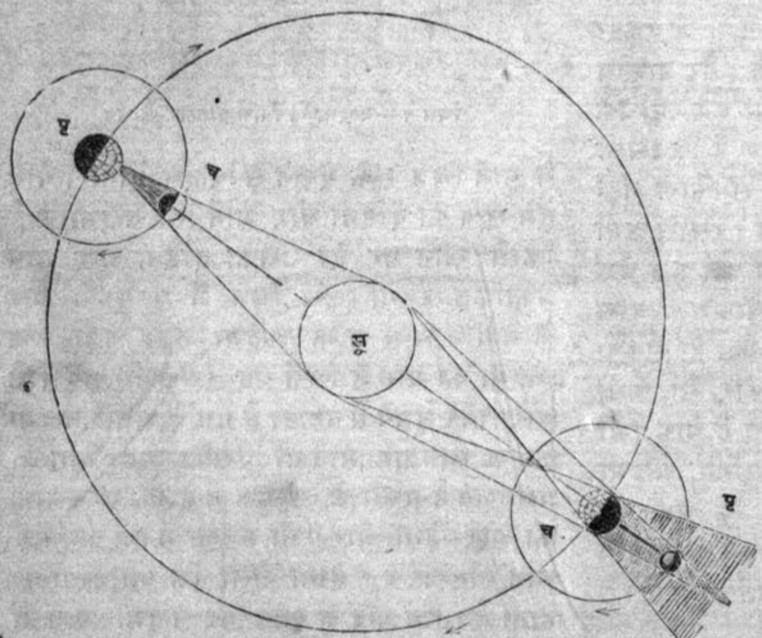


चित्र १—चन्द्रमा के विभिन्न प्रकार के रूप

ये बातें चित्र १ के देखने से विदित होंगी। यदि हम सूर्य्य को दहिनी ओर मानें तो चन्द्रमा चाहे किसी स्थान पर हो उसका दहिना अर्द्ध भाग प्रकाशित रहेगा। इस चित्र में प पृथ्वी और क ख ग घ च छ ज झ चन्द्रमा हैं। बड़ा चक्र चन्द्रमा का मार्ग है जिसे वह (चन्द्रमा) पृथ्वी के चारो ओर घूमने में बनाता है। यदि पहिले चन्द्रमा को क स्थान पर मानें तो उसका अर्द्ध भाग जो प्रकाशित है पृथ्वी के सन्मुख न होगा, वरन् सूर्य्य की ओर पड़ेगा, और ऐसी अवस्था में हमें वह अर्द्ध भाग दृष्टिगोचर न होगा जैसा कि अमावस्या को होता है। अब यदि ख स्थान पर चन्द्रमा आवे तो उसका अर्द्ध प्रकाशित भाग पृथ्वी की ओर होगा और हमको वह एक गोल चक्र की नाईं देख पड़ेगा, जैसा कि पूर्णिमा को होता है। एक बात

यह भी विदित होती है कि अमावास्या को सूर्य्य, चन्द्र और पृथ्वी, ये तीनों एकही रेखा में होंगे। जब चन्द्रमा ग और घ स्थानों में आवेगा तो हमलोग उसके अर्द्ध चमकते भाग का केवल अर्द्ध भाग देखेंगे और हमको वह आधी रोटी का सा विदित होगा जैसा कि दोनों पक्ष की अष्टमी को देख पड़ता है। जब च छ स्थान पर होगा तो उसके अर्द्ध प्रकाशित भाग का एक अंश दिखाई देगा जैसा कि चौथ का चन्द्रमा होता है। इसी प्रकार से जब ज झ स्थानों पर चन्द्रमा होगा तो उसके अर्द्ध प्रकाशित भाग का कुछ अंश छिपा रहेगा जैसा कि द्वादशी को होता है। इसी प्रकार वह सदैव घटता बढ़ता देख पड़ता है।

परन्तु पाठकगण पूछ सकते हैं कि प्रायः दूज वा तीज को जब आकाश निर्मल होता है तो चन्द्रमा सूर्यास्त के उपरान्त एक टेढ़ी लकीर सा देख पड़ता है, पर उसीके साथ उसका शेष भाग भी धुन्धला सा स्पष्ट दिखाई देता है, इसका क्या कारण है? वास्तव में यह शेष भाग पृथ्वी के प्रतिबिम्ब से कुछ प्रकाशित हो जाने से दिखाई देता है। क्योंकि जिस प्रकार से चन्द्रमा के प्रति-बिम्ब से पृथ्वी रात्रि समय प्रकाशित होकर उसकी कौमुदी से कवि और नायक नायिकाओं के चित्त को आनन्दित कर संसारी जीवों को मोहित करती है, उसी प्रकार से चन्द्रमा भी पृथ्वी के प्रतिबिम्ब से जो उस समय सूर्य्य के बिम्ब से प्रकाशमान होती है, चमकता है। पर यह प्रकाश बहुत मन्द होता है। यदि हम चन्द्रलोक में जाकर इस पृथ्वी को देखें तो हमको यह पृथ्वी ठीक एक बड़े चन्द्र के समान दिखलाई देगी और चन्द्रमा की नाईं घटती बढ़ती विदित होगी। इस पर आप कहेंगे कि अमावास्या के दिन ऐसा चन्द्रभास क्यों नहीं दिख लाई देता, पृथ्वी का प्रतिबिम्ब तो अवश्य उस पर पड़ता है! सुनिए, उस समय चन्द्रमा सूर्य्य के सामने होने से उसके प्रकाश के तेज से नहीं दिखाई देता। अब यह प्रश्न होता है कि चन्द्र और सूर्य्य ग्रहण कैसे होते हैं? आगे कह चुके हैं कि चन्द्रमा पृथ्वी के चारो ओर घूमता और पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा करती है। जब पृथ्वी और सूर्य्य के ठीक बीच में चन्द्रमा आजाय तो अवश्य चन्द्र की ओर से सूर्य्य का कुछ अंश या पूर्ण भाग ढक जायगा, तब हम लोगों को सूर्य्य ग्रहण विदित होगा और चन्द्र का प्रकाशित भाग सूर्य्य की ओर होने से हमको नहीं दीखेगा, उस दिन अमावस्या होगी। इसीसे सूर्य्य ग्रहण अमावस्या को होता है, दूसरी किसी तिथि को नहीं होता, और ग्रहण उसी स्थान पर



चित्र २

दिखलाई देगा जो उस समय सूर्य्य और चन्द्रमा से सरल रेखा में होगा। चित्र २ में दहिनी ओर देखने से विदित होगा कि जब पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य्य एक सरल रेखा में होंगे तो सूर्य्य का चन्द्रमा की ओर में होने से पृथ्वी पर छाया पड़ेगी और जिस स्थान में छाया रहेगी वहां वालों को ग्रहण दिखाई देगा। इसी प्रकार चन्द्रमा जब पृथ्वी के पीछे, जिस समय पूर्णमासी होती है, घूमता हुआ जायगा और तीनों (सूर्य्य, पृथ्वी और चन्द्र) जब एक सरल रेखा में होंगे तब चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ेगी, सूर्य्य का प्रतिबिम्ब उस पर न पड़ सकेगा। चन्द्रमा पहिले हलकी छाया में पश्चिम से पूर्व की ओर जाता दिखाई देगा और फिर गहरी छाया में (चित्र २ में बाएं चित्र को देखिए) इस प्रकार का पूर्ण ग्रहण पौने दो घण्टे तक रह सकता है। प्रत्येक पूर्णिमा और अमावास्या को ग्रहण न होने का कारण यह है कि चन्द्रमा का मार्ग और पृथ्वी का मार्ग एक धरातल में नहीं है। यदि ऐसा होता तो प्रति पन्द्रहवें दिन ग्रहण लगता। दोनों के मार्ग का धरातल एक दूसरे से ५ अंश का कोण बनाता है जो केवल दो स्थान पर एक दूसरे को काटता है। जब इन्हीं दोनों स्थानों पर चन्द्रमा आता है तभी तीनों एक सरल रेखा में होते हैं और ग्रहण लगता है। यह सब तो इसकी गति का वृत्तान्त है। अब दूरवीक्षण यन्त्र से देखने में क्या विदित होता है सो सुनिए।

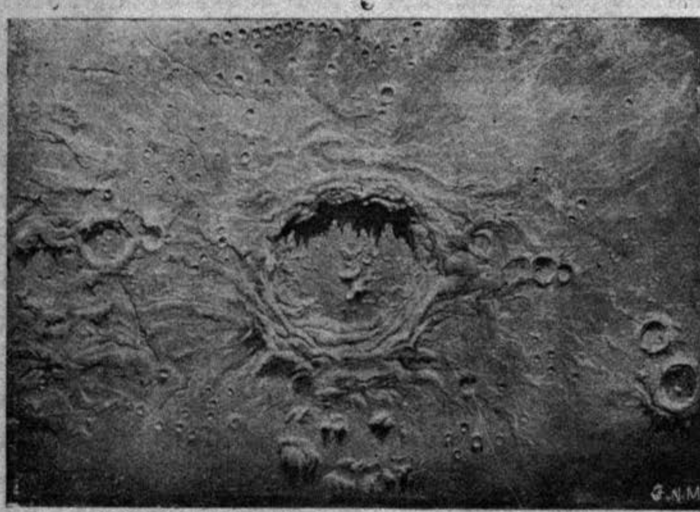
केवल नेत्रों से देखने पर चन्द्रमा में कुछ कुछ लाञ्छन (दाग) मालूम पड़ते हैं, जिन्हें हमलोग बाल्यावस्था में जानते थे कि बुढ़िया बैठी चरखा कात रही है। पर ऐसा नहीं है। दूरवीक्षण यन्त्र से देखने में इसमें बड़े बड़े पहाड़ मैदान ज्वालामुखी पर्वत और पहाड़ियां दिखाई देती हैं। केवल यही नहीं, वरन् इन ऊंचे पहाड़ों की परछाईं भी दिखाई देती है जो बढ़ती घटती है। जिस प्रकार से इस



चन्द्रमा का चित्र

भूमि पर सूर्य्योदय के समय प्रत्येक खड़ी वस्तु की परछाईं बहुत लम्बी होती है और जैसे जैसे सूर्य्य ऊपर आता जाता है, वह घटती जाती है, उसी प्रकार चन्द्रमा के पहाड़ों की परछाईं भी बढ़ती घटती है। इस परछाईं को नापने से पहाड़ों की उंचाई मालूम हो सकती है। जब चन्द्रमा को बड़े दूरवीक्षण यन्त्र से देखा जाता है तो ये पहाड़ घाटियां बहुत स्पष्ट दिखाई देती हैं। ज्योतिषियों ने चन्द्रमा के उस अधिक भाग को जो दिखाई देता है भली भांति नाप डाला है। आंखों से देखने

पर उसमें का स्थान कुछ अधिक चमकदार और कुछ धुन्धला दिखाई देता है, परन्तु यन्त्र से देखने पर यह भ्रम जाता रहता है और अधिक प्रकाशित स्थान पहाड़, और धुन्धले स्थान सरपट मैदान दीखते हैं. और इन पहाड़ों में ज्वालामुखी पर्वत भी मालूम पड़ते हैं जो इतने बड़े हैं कि इस पृथ्वीतल पर इनके बराबर एक भी पर्वत नहीं है। इन पर्वतों में जो सबसे ऊंचा है और जिसका नाम डोरफेल रक्खा गया है,२६६९० फीट है। रामपर्ट नामक एक दूसरा पहाड़ २३८५० फीट ऊंचा है। इसी प्रकार और भी कई एक ऊंचे ऊंचे शिखर हैं। इनकी ऊंचाई देखने से विदित होता है कि हिमालय पर्वत के समान ये ऊंचे हैं। महाशय माडलर ने चन्द्रमा में इनके उपरान्त ३९ और ऐसे पर्वतों की ऊंचाई नापी है जो योरप के प्रसिद्ध पहाड़ मौन्ट ब्लांक से अधिक ऊंचे हैं। ब्लांक की चोटी १५८७० फीट ऊंची है। सारांश यह कि यद्यपि चन्द्रमा पृथ्वी से बहुत छोटा है पर इसके पहाड़ पृथ्वी के पर्वतों के बराबर ऊंचे हैं। उनमें ज्वालामुखी ऐसे भयङ्कर हैं कि उनके व्यास १ मील से लेकर ४२ मील तक हैं।



चन्द्रमा में ज्वालामुखी पहाड़ के क्रेटर

इसका बोध इस प्रकार हो सकता है कि विसूवियस पहाड़ फूट कर ज्वाला से गले पत्थर और राख आदि बड़े बेग से निकलने पर उसके पास के दो बड़े बड़े प्रसिद्ध नगर हरक्युलेनियम और पाम्पिआई ऐसे दबे कि लगभग १५०० वर्ष तक उनका पता नहीं लगा, केवल २५० वर्ष से इनका पता मट्टी खोद कर नगर के निकलने से मालूम हुआ। अब वह ज्वाला शान्त है और इसकी ज्वाला निकलने वाले मुंह की चौड़ाई आधी मील भी नहीं है। आज कल इस प्रकार के पर्वत जो चन्द्रलोक में हैं सब ठण्ढे प्रतीत होते हैं। इन बड़े भयङ्कर ज्वालामुखी के फूटने से कैसा महाप्रलय उस भूमि पर हुआ होगा, इस बात को पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं। यदि उस समय में जीवधारी वहां रहे होंगे तो वे सबके सब उस निकली हुई अग्नि में जो सैंकड़ों कोस तक फैली होगी भस्म हो गए होंगे, क्योंकि इन पहाड़ों के देखने से स्पष्ट विदित होता है कि ये किसी समय में बड़े वेग से फूटे हैं और इनकी भयङ्कर अग्नि बहुत दूर तक पहाड़ियों की नाईं फैली हुई अब तक देख पड़ती है। इस समय तक कोई पहाड़, जिनसे ज्वाला निकलती हो, नहीं देख पड़े हैं, पर आशा है कि जो बड़े बड़े यन्त्र इस समय बनाए गए हैं, उनसे देखने पर यदि होंगे तो अवश्य देख पड़ेंगे। विद्वानों का यह मत है कि चन्द्रलोक छोटा होने के कारण उसके भीतर की उष्णता सब निकल गई है और अब यह गोला ठण्ढा हो गया है। क्योंकि जो अग्नि और ज्वाला आदि पर्वतों के द्वारा इस पृथ्वी पर निकलती है वह हमारे गोलाकार पृथ्वी के भीतर की अग्नि है। जब हमारी पृथ्वी की उष्णता निकल जायगी तो इस पृथ्वी पर भी कोई ज्वालामुखी पर्वत जीवित न

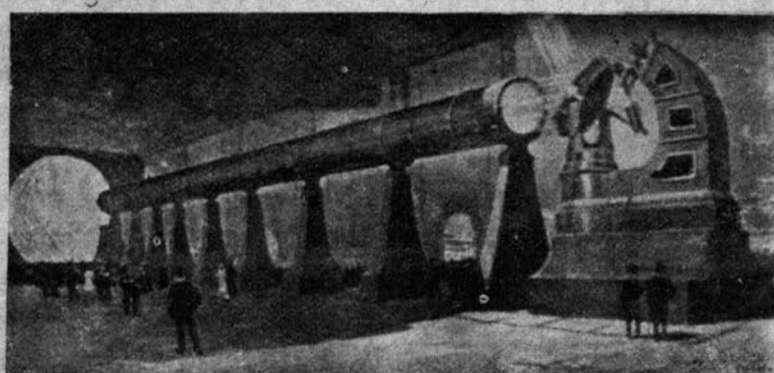
रहेगा ग्रैार सब चन्द्रलोक के पर्वतों की नाईं ठण्ढे हो जांयगे।

ग्रब तक ज्योतिषियों का यह मत रहा है कि चन्द्रमा में न तो वायु है ग्रैार न जल। इसका प्रमाण वे लोग यह देते थे कि उसमें न तो कोई जल का चिन्ह है ग्रैार न बादल दिखाई देते हैं। ग्रैार दूसरी बात यह कही जाती है कि जब चन्द्रमा किसी ग्रह वा तारे के सामने होकर जाता है तो वह तारा एक दम से उसके पीछे लुप्त हो जाता है। यदि चन्द्रमा के चारों ग्रोर वायु होती तो यह बात न देख पड़ती, वरन् वह तारा पहिले चपटा ग्रैार धुन्धला होकर क्रमशः लुप्त होता। इन बातों को देख कर ग्रब तक यही विचार किया जाता था। पर नहीं, उसमें वायु है इस बात का पता यन्त्रों से लगा है। वह वायु ग्रत्यन्त सूक्ष्म ग्रैार पतली ग्रर्थात् हलकी है। इसका प्रमाण यों मिलता है कि यदि उसके चारों ग्रोर जैसा कि इस पृथ्वी पर है, वायु न होती तो वहां बहुत शीत होता, यहां तक कि वहां दिन को भी ५० डिगरी की सरदी होती। पर यन्त्रों से जांचने पर यह बात नहीं पाई जाती। पहिले कहा जा चुका है कि चन्द्रमा का एक दिन रात २९½ दिन का होता है, ग्रर्थात् उसकी रात्रि हमारे १४ दिन १८ घण्टे की होती है ग्रैार ग्राधे गोले में रात्रि इतनी लम्बी होने के कारण यदि वहां वायु बिलकुल न होती तो इतनी सर्दी होती कि जितनी साइबीरिया के महा भयानक मैदानों में या उत्तरी ध्रुव पर भी नहीं है। इसके उपरान्त पाठकगण भली भांति जानते हैं कि जिस दिन बदली होती है वा जिस समय वायु में धूल ग्रधिक होती है, उस रात्रि को सर्दी कम मालूम होती है, ग्रर्थात् पृथ्वी के ठण्ढी होने से वायु बादल वाष्प ग्रैार धूल ग्रादि को रोकती है। यदि इस पृथ्वी पर वायु तनिक भी न होती तो ग्राज दिन हमलोग भी सदैव मोटे ऊनी वा रोएं-दार कपड़ों में कसे होते, ढाके की मलमल के कपड़े बनाने की न सूझती ग्रैार ढाका इस कारीगरी के लिये न प्रसिद्ध होता। तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा में जितनी सरदी इस समय है उससे बहुत ग्रधिक होती, यदि वहां वायु न होती। पर पाठकगण कह सकते हैं कि यह तो हमने माना कि वहां वायु है ग्रैार बहुत सूक्ष्म है, पर जल का होना विदित नहीं होता, क्योंकि यदि जल वहां होता तो बादल ग्रवश्य देख पड़ते। पर थोड़ा सा विचारने पर यह शङ्का जाती रहती है।

ग्राप जानते हैं कि बादल क्या वस्तु है? यह जल का वाष्प है, जो ठण्ढक पाने पर घना होकर दिखलाई देता है : ग्रैार यह वाष्प वायु में हलका होने के कारण तैरता रहता है। ग्रब यदि वायु बहुत हलकी हो जाय तो कभी बादल न देख पड़ेंगे, क्योंकि वाष्प वायु में ठहरेगा नहीं, वरन् तनिक सरदी पाने पर वह जम कर पृथ्वी पर उसी दम गिर जायगा, ग्रर्थात् बादल पैदा होने के हेतु वायु का वाष्प से भारी होना ग्रावश्यक है। यही कारण है कि चन्द्रमा में बादल ग्रादि नहीं पैदा होते। वायु वहां की बहुत सूक्ष्म है। तो बादल के न होने से हमारा यह ग्रनुमान कि चन्द्रमा में जल नहीं कुछ ठीक नहीं है। पर यह हो सकता है कि जल द्रव ग्रवस्था में न हो, क्योंकि वहां सरदी इस पृथ्वी से ग्रधिक है।

ग्रब चन्द्रमा के प्रकाश का वृत्तान्त सुनिए। यदि सूर्य के प्रकाश को श्वेत मानें तो चन्द्रमा का रंग मटमैला धुंधला पीला सा है। पर ग्रंधेरी रातों में हमको यह मधुर हलके नीले रंग का सा, जिस-के देखने से शीतलता प्राप्त होती है, मालूम होता है। पर यह हमारा भ्रम है। हम यह कह कर इसको मधुरता को घटाना नहीं चाहते कि वास्तव में न तो यह ठण्ढक पहुंचाता है ग्रैार न उस रंग का है जैसा कि देख पड़ता है, वरन् भूरे रङ्ग का है। हमे भय है कि कवियों के हृदय को यह सुन कर कष्ट होगा। इसका प्रकाश इतना सूक्ष्म है कि सूर्य के प्रकाश से ५४७५१३ गुणा कम है। ग्रर्थात् ५४७५१३ पूर्णिमा के चन्द्रमा एकत्र किए जांय तो इन सबका प्रकाश हमारे सूर्यदेव के प्रकाश के बराबर होगा।

अब सुनिए, पेरिस की प्रदर्शनी में एक ऐसी दूरबीन बना कर दिखाई गई है जिसके द्वारा चन्द्रमा देखने में इतना निकट देख पड़ेगा मानो १८ कर यन्त्र के बड़े लेन्स पर पड़ता है। तब यन्त्र की दूसरी ओर उस वस्तु का कई सहस्र गुणा बड़ा होकर चित्र बड़े श्वेत परदे पर पड़ता है



पेरिस प्रदर्शनी में दूरवीक्षण यन्त्र

कोस (३६ मील) पर है। प्रायः दूरबीनों से एकही समय में एक मनुष्य किसी वस्तु को देख सकता है, पर इस दूरवीक्षण यन्त्र में यह विचित्रता है कि सैंकड़ों आदमी एकही बेर जिस ग्रह को चाहें देख सकेंगे। इस दूरवीक्षण यन्त्र की लम्बाई १९७ फीट है जिसमें सबसे बड़ा कांच का लेन्स लगभग ५० इञ्च व्यास का है। इस कांच का स्वयं बोझ ६६० सेर अर्थात् १६ मन २० सेर है। इतने बड़े लेन्स के बनाने में बड़ा परिश्रम और द्रव्य व्यय हुआ, अर्थात् केवल लेन्स के बनाने में ४५००० रुपए व्यय हुए। इसके बनाने वाले पेरिस नगर के एक प्रसिद्ध पुरुष एम० मानटोइस साहब हैं। दूरबीन का बोझ ५८० मन है और यह ५ फीट मोटा है। इससे यदि चन्द्रमा देखा जाय तो वह १८ फीट चौड़ा देख पड़ता है। यह यन्त्र बड़े बड़े खम्भों पर सुला कर रक्खा हुआ है। इसके आगे एक बड़ा दर्पण इस प्रकार से लगा है कि चारो ओर घूम सकता है। जिस वस्तु को देखना हो उसका प्रतिबिम्ब इस प्रकार से इस दर्पण पर डालते हैं कि इससे आया हुआ प्रतिबिम्ब फिर

जिसको सहस्रों पुरुष देख सकते हैं; मानो वह मेजिक लालटेन के चित्र की नाईं देख पड़ता है जैसा कि चित्र देखने से विदित होगा। अभी ज्योतिषियों ने इस यन्त्र से काम नहीं लिया है, पर आशा की जाती है कि जब लोग इसमें भली भांति आँख लगा कर देखेंगे तब चन्द्रमा में यदि जीव आदि होंगे तो अवश्य देख पड़ेंगे। अब पाठकों को कुछ काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, परन्तु जब कोई विषय विचित्र दिखाई देगा तो आशा है कि इस पत्रिका में उसका समाचार हम प्रकाशित करेंगे, क्योंकि चन्द्रमा में जीव का होना सम्भव है।

अभी कुछ काल हुआ कि 'अवध अखबार' में प्रकाशित हुआ था कि हरशल महाशय ने, जो एक प्रसिद्ध ज्योतिषी के पौत्र हैं, गत जनवरी में एक बड़े यन्त्र द्वारा कुछ ऐसी वस्तु चलती फिरती चन्द्रमा में देखी जो जीव के समान थी। इसके उपरान्त उन्होंने मनुष्यों के स्वरूप वाले जीव देखे जिनके देह पर लम्बे लम्बे बाल थे, पर ये बातें उसी समय में देख पड़ती हैं जब आकाश अत्यन्त निर्मल रहता है। आशा की जाती है कि

इस पेरिस वाले यन्त्र से, जो इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा ग्रैार शक्तिवान् है, ये जीव स्पष्ट देख पड़ेंगे ग्रैार शीघ्रही इसका वृत्तान्त विदित हो जायगा। ईश्वर की महिमा का पारावार नहीं है। जब उसने पृथ्वी पर जीव उत्पन्न किए तो चन्द्रलोक में यदि इस प्रकार के नहीं जैसे कि इस पृथ्वीतल पर हैं तो अन्य प्रकार के जीव अवश्य उत्पन्न किए होंगे।

दक्षिण द्वीप के प्रवासी का पत्र

प्यारे मित्र, यह तुमको मैं पहिले ही लिख चुका हूँ कि देश में बहुत कुछ चेष्टा करने पर भी मेरी जीविका का कुछ भी उपाय न हुआ ग्रैार कई वर्षों तक क्लेश सहने के अनन्तर मैंने इस टापू में ही चले ग्राने का विचार कर लिया। यह भी तुम्हें पहिले पत्र में लिख चुका हूं कि कैसे कैसे दुःख ग्रैार कठिनाइयां झेल कर निदान यहां ग्राकर मैं बस गया ग्रैार एक प्रकार से पेट भरने की चिन्ता से निश्चिन्त हो खेती बारी के काम में लग गया। सच पूछो तो यह एक बड़ा ही सुन्दर देश है ग्रैार यहां के रहने वाले असभ्य ग्रैार गवांर होने पर भी बड़े भले हैं। वे बड़े सीधे सादे ग्रैार बुद्धिमान हैं, ग्रैार जब से हमारे कप्तान साहब ने उनके मुखिया से मेल कर लिया है, तब से वह हमलोगों का मित्र ग्रैार रक्षक बन गया है ग्रैार हमलोगों ने इन लोगों के साथ बैलों का व्यापार भी कर लिया है। वे तो हमें बैल, गाय, ग्रादि चैापाए दे जाते हैं ग्रैार हमलोग उसके विनिमय में लोहा ग्रैार तामा उन्हें दिया करते हैं। लोहे से वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं, ग्रैार इस वस्तु का मूल्य भी वे बहुत बढ़ चढ़ के लगाते हैं। पर, हाय, भाइ, तुम्हें पहिली चिट्ठी लिखने के अनन्तर मेरे भाग्य में ऐसी ऐसी दुर्दशा भोगनी लिखी थी, कि कभी किसी मनुष्य को ऐसा होना सम्भव नहीं है। अब मैं तुमसे वह वृत्तान्त कहता हूँ कि यदि यह किसी उपन्यास में लिखा जाता तो लोग असम्भव जान कभी इसका विश्वास तक न करते। पर मेरा यह वृत्तान्त बहुत ही सत्य है। इस पृथिवीतल में बहुतेरी ऐसी बातें नित्य हो रही हैं जिनका ज्ञान तक किसीको नहीं है ग्रैार न किसीकी बुद्धि में वे सम्भव जान पड़ती हैं। लोग ऐसी बातों को स्वप्न में भी नहीं देखते होंगे।

मेरी चमेली को तो लड़काई से ही तुम जानते हो ग्रैार बटुकपुर में हम लोगों के व्याह के समय भी तो तुम उपस्थित थे। मुझे स्मरण है कि तुमने उसके उस बालरूप ही को कैसा सराहा था ग्रैार मुझे ऐसे स्त्रीरत्न के मिलने पर बड़भागी बताया था। परन्तु, मित्र, बहुत दिनों से तुमसे हमलोग बिछुड़े हुए हैं, तुम मेरी प्रतीत नहीं करोगे पर इस समय के उसके रूप रंग से ग्रैार तब से आकाश पाताल का भेद है। जब वह हमारे खेतों में अपने बालक को गोद में लिये घूमा करती है तो मैं समझता हूं कि ऐसी मोहिनी प्यारी लक्ष्मी किसी दूसरे मनुष्य के घर न होगी।

ग्रस्तु एक दिन कारू मुखिया मेरे पास ग्राया ग्रैार अपने द्विभाषी के मुख से वह अपने प्रताप के बड़े बड़े व्याख्यान सुनाने लगा। उसके पास इतने गांव हैं, उसमें ऐसे ऐसे गुण हैं, इतने मनुष्य उसके अधीन हैं, वह यहां ये ये बातें देश के हित के लिये करना चाहता है, इत्यादि इत्यादि ग्रांय बांय शांय, अपनी डूश, जर्मन, ग्रंग्रेज़ी, मन्द्राज़ी, जाने कहां कहां की भाषाग्रों की एक मसालेदार खिचड़ी पका कर उसने मेरे कानों में ठूंसनी आरम्भ कर दी। सुनते सुनते हँसी के मारे मेरा पेट फूल रहा था। पर फिर जो कुछ उसने कहा उसे सुन कर मैं सन्न हो गया। उसने अपने व्याख्यान को यह कह समाप्त करवाया कि मेरी चमेली को वह अपना किया चाहता है ग्रैार उसके बदले में मुझे चार बैल देने पर तैयार है; मैं जब चाहूँ चमेली के परिवर्त्तन में अच्छे से अच्छे बैल चुन कर उसके यहां से ले लूं।

जब वह यह सब हाथ मूंह हिला कर कहलवा रहा था, उस समय मेरी स्त्री भी वहीं उपस्थित थी। इस अद्भुत वाणिज्य के ढङ्ग को, और विशेष कर इसके कहने की रीति को सुन कर वह तो खिल-खिला कर हंस पड़ी। कारू ने सोचा कि उसके समान मर्य्यादावान् पुरुषरत्न के आश्रय-लाभ की सम्भावना से वह बड़ी प्रसन्न हुई है, और फिर अपनी गोल गोल आंखों को फाड़ कर इस भांति वह उसकी ओर प्रेम से निहारने लगा कि मैं उसे ठीक ठीक लिख कर नहीं बता सकता। द्विभाषी के द्वारा उसने एक और बौछाड़ आरम्भ कर दी कि जिससे ज्ञात हुआ कि कैसे कैसे सुख और आनन्द मेरी स्त्री के भाग्य में होंगे। उनमें से एक तो यह था कि उसके चढ़ने के लिये एक बड़ा मोटा ताज़ा बैल रहेगा जिसके सींगों की नोकें सोने से मढ़ी होंगी।



कारू मुखिया

मेरे ऊपर उसने जो अनुग्रह और कृपादृष्टि की उसके लिये मैंने कारू को अशेष धन्यवाद दिए। परन्तु यह कहना ही पड़ा कि स्त्री का बैलों के साथ मैं बदला नहीं कर सकता हूं, क्योंकि वह मेरी अर्धाङ्गिनी है और केवल मृत्यु ही से हम दोनों का साथ छूट सकता है। परन्तु उसको ऐसे नाते का होना सम्भव नहीं जान पड़ा। वह बारम्बार समझाने लगा कि सभी लोग अपनी स्त्री और बेटिओं को बेच दिया करते हैं, और स्त्री सदा पुरुष ही के आज्ञाधीन है, वह जैसा चाहे उसके साथ वर्ताव कर सकता है। ताम्बुको से उसने बहुत सी स्त्रियां मंगवाई हैं; वे सब कुआरी हैं, तौभी किसीके लिये उसने दो गाय से अधिक नहीं खर्चीं; परन्तु मेरी स्त्री उसकी आंखों में जचगई थी इसी कारण देश भर में अच्छी से अच्छी चार स्त्रियों का मूल्य अकेली उसीके लिये वह देने को तैयार है। अन्त में उसने बिना कुछ आगा पीछा किए अपनी स्त्री के बेचडालने के लिये बारम्बार मेरी प्रार्थना की। और जब मैंने उससे अन्त में साफ साफ कह दिया कि पृथ्वी के किसी रत्न से भी मैं अपनी स्त्री का परिवर्त्तन नहीं करने का, तब तो वह कुछ खिसियाया सा जान पड़ा; अपना अगूंठा दांतों से काटने, और भौंहें सिकोड़ने लगा और चुपचाप कुछ देर तक सोचता रहा, बारम्बार मेरी स्त्री की ओर आंखें फाड़ फाड़ कर बड़े चाव से देखने लगा, और फिर बड़े जोर से अपना भाला भूमि में गाड़ कर उसने मेरी स्त्री का मूल्य दस गाय और एक सांड़ लगा दिया और एक युवा कुआरी कन्या घलुए में मुझे देने लगा। जब मैंने इस बात को भी स्वीकार न किया तो बड़ी घृणा से थोड़ा सा मुसकरा कर उसने कहा "तू बुद्धिहीन का पुत्र है!" उसने यह भी मुझसे कहा कि कभी इसके लिये मुझे पछताना पड़ेगा। तीन बार उसने इसी वाक्य का उच्चारण किया और बड़े क्रोध में आकर वहां से वह चला गया। भाई, क्या तुम्हें विश्वास हो सकता है कि इसके लिये मुझे पछताना पड़ा है?

मेरा छोटू इस समय ग्यारह महीने का था, और अपनी माँ ही का दूध पीता था। जिस समय का वृत्तान्त मैं लिख रहा हूं, ठीक उन्हीं दिनों, एक दिन रात्रि को हमारी छोटी बस्ती को वनमानुसों ने आकर घेर लिया। वनमानुस क्या हैं तुम जानते हो? ये पशु हैं। बन में रहते हैं और आकृति प्रकृति बहुत सी बातों में मनुष्यों से मिलते जुलते हैं। ये लोग प्रायः मनुष्यों की बस्तिओं पर आ टूटते

हैं और फल फलहरी रतालू और गाजरों का सत्यानाश कर जाते हैं। उसी दिन से हमलोग बहुत सी बन्दूकें रातदिन भर कर रख छोड़ते थे और एक पहरे का भी प्रबन्ध हमलोगों ने कर लिया था। यह लुटेरे बनैले कुछ दिनों में फिर एक दिन आ पहुंचे। इनके आक्रमण से हमलोग निश्चिन्त नहीं रह सकते थे, क्योंकि वे बड़े बली और हिंसक पशु हैं, और हमारी बन्दुकों में साधारण गोलियां भरी थीं। हमलोगों को पहिले देखते ही वे भाग खड़े हुए और ऐसी तीव्रता से भागे कि हरिण का पीछा कर वह पकड़ भी लिया जा सकता है पर उनका पीछा करना कुछ काम रखता है। एक बार बहुत पास से उनपर बन्दूक चलाने पाए थे और निस्सन्देह कई एक को गोली लग भी गई होगी, क्योंकि रक्त का चिन्ह लगातार हमको मिलता गया था। नदी के तीर तक उनका पीछा हमलोगों ने किया, और फिर वे तैर कर पार उतर गए और उनका कोई पता न चला।

इन सब लुटेरों में से एक बच्चे के अतिरिक्त और कोई नहीं गिरा। इसको मैंने अपनी गोद में



बनमानुस का बच्चा (राजकुमार)—जो छूट गया था

उठा लिया। वह ऐसी आर्त्त दृष्टि से मेरी ओर निहारने लगा और बालकों की भांति चिल्लाने लगा कि मेरा चित्त भर आया। एक भूत छः फ़ोट से भी अधिक ऊंचा—यह देख कर कि उसका बच्चा छूट गया है, एक बड़ा भारी सोंटा हिलाता हुआ लौट पड़ा, और मेरी ओर दांत फाड़ कर घूरने लगा। मैं तो बच्चे को छोड़ देना ही चाहता था, क्योंकि उसे मार डालने की इच्छा मुझे नहीं थी। परन्तु मैं बिचार ही रहा था कि मेरे सङ्गियों में से कई मनुष्यों ने उस कदाकार भयङ्कर जीव पर गोलियां चलाईं कि जिनसे चोट खाकर उसे फिर उलटे पांव भागना पड़ा; परन्तु भागती बेर मुड़कर उसने मेरी ओर हाथ मुंह हिला कर कुछ चिन्ह से किए, मानो उसने यह कहा कि बचा, सम्भले रहना, इसका मज़ा हम तुम्हें चखवाएंगे। इतने में मेरे एक नौकर ने उस बच्चे का काम तमाम कर दिया।

उसके दूसरे ही दिन सवेरे मेरी स्त्री एक टहलनी को लेकर बाहर मैदान में गौओं का दूध दुह रही थी। मैं बगीचे में था और छोटू अपनी मा के पास फूल नोच नोच कर खेल रहा था। अकस्मात् स्त्रियां मेरे गृह के भीतर से एक भीषनाकार बनमानुस को बड़े वेग से निकलते देखकर डरगईं और चिल्ला उठीं। ऐसा मालूम हुआ कि भय से वे गूंगी हो गई थीं और बुद्धि उनकी उस समय लुप्त हो गई थी, क्योंकि एक बार चिल्लाने के अतिरिक्त कोई भी कुछ न बोली जब तक कि उस राक्षस ने आकर मेरे बालक को न उठा लिया और उसे लेकर वह लम्बा हुआ। मेरे पास तो स्त्रियां न आईं परन्तु वे उस पशु के पीछे पीछे दौड़ने लगीं। मैं समझता हूं कि वे यह नहीं जानती थीं कि क्या कर रही हैं। उनके भयसूचक आर्त्तनाद को सुनकर मैं यह समझ कर कि गाएं स्त्रियों पर कूद पड़ी हैं, जहां पर दूध दुहा जाता था वहां दौड़ आया, क्योंकि यहां के चौपाए किसी कारण से जब क्रुद्ध होते हैं तो धक्का देकर गिरादेते हैं। परन्तु गौओं के निकट मेरे पहुंचने के पहिले ही बालक को लेकर बनमानुस आधमील आगे निकल गया था और केवल थकी हुई स्त्रियां चिल्लाती हुई उसके पीछे पीछे दौड़ रहीं थीं। बहुत देर तक

मैं नहीं समझ सका कि यह हो क्या रहा है, परन्तु मेरे हाथ में फावड़ा था उसीको लिए हुए बिना सोचे विचारे मैं भी उसी ओर दौड़ा। स्त्रियों तक पहुंचने के पहिले ही मेरे प्यारे बालक के भय से रोने का शब्द मेरे कानों में आया। उस समय जिस भय का सञ्चार मेरे हृदय में हुआ, मनुष्य के हृदय में ऐसा कोई भाव कभी उदय नहीं होता है जिसके साथ उसकी तुलना की जाय। मेरी नसें ढीली हो गईं और सारा शरीर बेकाम और बलहीन हो गया। मुझे जान पड़ता है कि मैं अभ्यास से बहुत शीघ्र ही दौड़ा होऊंगा, परन्तु प्रति मूहूर्त्त में ठोकर खा रहा था, और ज्योंही कि मैं अपनी स्त्री के समीप होकर दौड़ा था, वह पृथिवी पर गिर पड़ी थी। मेरी दासी, केलानी ने, जो उसी देसवासिनी थी, उस समय अपनी बुद्धि का परिचय दिया। वह बिना किसीके कहे ही, और बिना किसीको जताए कि वह कहां है और क्या कर रही है, सब लोगों का साथ छोड़कर बस्ती में और और मनुष्यों को समाचार देने के लिये दौड़ गई। इस कार्य को उसने बड़ी शीघ्रता से करडाला। मैं बेदम, और दुःख से पीड़ित और बलशून्य होकर दौड़ ही रहा था, परन्तु, हाय, आगे क्या बढ़ता था, मैं पीछे ही छूटता जाता था।

मैं समझता हूं कि यदि समय से निकला होता तो सम्भव है कि उस राक्षस तक पहुंच भी जाता, परन्तु अब तो नैराश्य ने मुझे विकल कर दिया। और सच तो यों है कि वह पशु कुछ बहुत दौड़ा भी नहीं; जितना कि ये लोग दौड़ सकते हैं उसका आधा भी वह नहीं दौड़ पाया, क्योंकि लड़के को लिए हुए वह ठीक ठीक नहीं जा सकता था। इन पशुओं की प्रकृति को, सम्भव है, कि तुम नहीं जानते हो और न मैं ही जानता हूं। पर उनका यह स्वभाव है कि जब वे निश्चिन्त होकर धीरे धीरे टहलते हैं, अथवा किसी पहाड़ी के नीचे की ओर उतरते हैं तो मनुष्य के समान सीधे होकर चलते हैं, परन्तु जब सामने पहाड़ की चढ़ाई रहती है, अथवा समथर भूमि पर पश्चाद्धावित होते हैं तो अपनी लम्बी लम्बी भुजाओं से अगले पैरों का काम लेते हैं और तब एक अचिन्तनीय शीघ्रता उनमें आ जाती है। जब उनके पास अपना बच्चा रहता है तो साधारण मनुष्य से दुगना शीघ्रतर वे भाग सकते हैं, क्योंकि उनके बच्चे अपने हाथ पैरों से उनके देह से चिपटे रहते हैं। परन्तु मेरा छोटू तो उसके स्पर्श से भी संकुचित होता था, इस कारण अपने एक हाथ से वह उसे पेट से लगाए हुए था, और केवल तीन ही हाथ पैरों से दौड़ रहा था, परन्तु तब भी वह मेरे आगे ही आगे था। भगवान न करे कि कोई मनुष्य कभी इस भांति हृदय-विदारक अचिन्तनीय दुःख में पड़ कर दौड़े। इसी भांति वह काई नदी के तीर पर पहुंचा और वहां आशा मायाविनी के जो कुछ बचे बचाए अंश मेरे हृदय में रह गए थे, सब ठंढे हो गए, क्योंकि मैं तैरना नहीं जानता था और बनमानुस बड़ी फुर्ती से बालक को कन्धे पर डाल कर, नदी पार निकल गया। इसी भयङ्कर समय में मेरे प्यारे बालक ने मुझे मैदान पर दौड़ते हुए देखा और मैंने भी देखा कि नदी की लहरों में से वह अपने दोनों हाथ उठा कर "चाचा! चाचा!" कह कर चिल्ला रहा है। मुझे ऐसा जान पड़ा कि मुझे अपनी ओर दौड़ते हुए देख कर वह अपनी नैराश्य अवस्था में भी कुछ आशा पाकर आनन्दित हो रहा था।

हाय! यही दृश्य अन्तिम हुआ, क्योंकि और दो ही मिनट में वह राक्षस मेरे प्यारे बच्चे को लिए हुए, नदी के दूसरे पार के घने जङ्गलों में दृष्टि से लुप्त होगया। और तब मेरी चाल भी रुक गई, क्योंकि जल में प्रवेश करना और आत्मघात करना दोनों एक ही बात थी और फिर परदेश में पीछे एक अनाथिनी विधवा को अकेली छोड़ना पड़ता। इसलिये उस समय किङ्कर्तव्यविमूढ़ हो मैं गिर पड़ा और फूट फूट कर रोने और भगवान को मनाने लगा। इस दशा में मैं अधिक न रहा होऊंगा कि

अपने सन्मुख मैंने निज देशवासी बारह मनुष्यों को चले आते देखा। वे सब सशस्त्र और धावे के लिये तैयार होकर निकले थे, और उनमें से चार मनुष्य जो अच्छी तरह तैर भी सकते थे, तुरन्त नदी में कूद पड़े और देखते देखते पार उतर गए, और फिर बनमानुस जिस ओर गया था उसी ओर बढ़ने लगे।

हमलोग बचे हुए नौ मनुष्य नदी के उद्गम की ओर बहुत दूर निकल गए, और शेखी नामकी एक बस्ती में पहुंच कर ताम्बुकिओं के बेड़ों पर बैठ नदी पार उतरे। वहीं एक माउसी से भेट हो गई जो एक कुत्ता ले आया और कहने लगा कि यह गन्ध से बनमानुस की खोज लगा देगा। नैराश्य-सागर में तो हमलोग डूबे ही थे, परन्तु बड़ी बेर तक खोजते रहे। जब सांझ हो आई तो कालीसिंह एक जङ्गल में से निकल आया। यह उन चार मनुष्यों में से था जो तैर कर नदी पार हो आए थे, और यह तीनों से कहीं पर जङ्गल में बिछुड़ गया था। उसपर भी एक अनोखी घटना हो गई थी। वह और उसके तीनों साथी इस बात पर सहमत हो गए थे कि एक दूसरे को पुकारने पर सुनाई दे इतनी ही दूरी पर वे एक दूसरे से अलग हों, परन्तु जब वह आगे बढ़ा तो जान पड़ा कि कोई बालक रो रहा है और जब उसी ओर कुछ और आगे वह बढ़ा तो कोई शब्द नहीं सुन पड़ा। जब वह यों खोजता फिरता था तो उसने देखा कि एक बनमानुस चुपके से एक झाड़ी से निकला आ रहा है। यद्यपि उसके भाव से लक्ष होता था कि वहां से वह हटना भी नहीं चाहता है, परन्तु पीछा करने पर वह धीरे धीरे भागचला, मानो उस स्थान से वह फुसला कर उसे हटा देना चाहता था। परन्तु जब कालीसिंह झाड़ी की ओर मुड़ा तो बनमानुस भी लौट आया। कालीसिंह के पास एक पिस्तौल और तलवार थी, परन्तु पिस्तौल और बारूद सब नदी में तैरते समय बेकाम हो गई थीं, इसलिये तलवार ही पर इस समय कालीसिंह को निर्भर होना पड़ा। बनमानुस पहिले पिस्तौल से डरा, परन्तु जब उसने देखा कि उससे आग नहीं निकलती है तो वह धीरे धीरे पास आने लगा और कालीसिंह से मुठभेड़ करने पर सन्नद्ध हो बैठा। तब उसने अपना सिर हिलाया और घृणा से दांत निकाल कर मुंह बिराने लगा, और पिस्तौल को फेंकदेने के लिये इङ्गित करने लगा, मानो कहता था कि इसे निष्प्रयोजन क्यों रक्खा है। तब वह दो सोटे ले आया और उसके सामने उसने उन्हें रख दिया, मानो कह रहा था कि ले, जौनसा चाहे चुन ले और आ, मुझसे भिड़जा। उसके आचरण में कुछ ऐसा साहस और साथ ही कुछ ऐसी मार्मिकता सी देख पड़ती थी कि कालीसिंह ने एक सोटा उठालिया, मानो उससे लड़ने पर प्रस्तुत हो गया। परन्तु ज्योंही उसने तलवार को कोष से निकाला, कि उसकी चमक को देखकर वह भयानक जन्तु डर गया और सूअर की भांति दो तीन शब्द कर तुरन्त ही वहां से चम्पत हुआ, पर दूसरे ही क्षण लौट कर कालीसिंह की ओर ऐसा लक्ष्य बांधकर उसने सोंटा फेंका के वह यदि अपने को न संभालता तो मर ही गया होता। रात को वह पशु फिर नहीं देख पड़ा, परन्तु जब हमलोग वहां पर पहुंचे तो कालीसिंह इधर उधर उसे ढूंढ़ ही रहा था, और उसे विश्वास हो गया था कि मेरा पुत्र उसी स्थान में कहीं पर है।

रात भर हमलोग उस झाड़ी को ताकते रहे, और जिस समय अन्धेरा बहुत गहरा हो गया था तो एक बेर मेरे मन की तड़प पर तो विचार करो कि जब पासही में झाड़ी के भीतर मैंने बालक के रोने का शब्द सुना और अच्छी भांति जान गया कि वह प्यारे छोटू ही की बोली थी; वे शब्द उन्हीं प्यारे ओठों से निकल रहे थे जिन्हें मैंने एक एक दिन में सैकड़ों बेर चूमा था। तत्क्षण हमलोग सबके सब उसी ओर झपटे, परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि एक दूसरे पर

गिरने के अतिरिक्त हाथ कुछ भी न लगा। मैंने अपने बेटे का नाम ले लेकर पुकारा, पर कहीं कुछ नहीं, सब फिर सन्नाटा हो गया। और फिर कुछ भी सुनाई न पड़ा। वह केवल तीन बेर बोला था और हम सब लोगों को स्पष्ट जान पड़ता था कि कोई कुछ ठूंसकर उसका मुंह बन्द कर रहा हैं। मुझे अब तक आश्चर्य होता है कि उस समय मेरी बुद्धि क्योंकर ठिकाने रही, क्योंकि मेरे जान आज तक कभी किसी पिता की ऐसी कठिन परीक्षा नहीं हुई है। दिन निकलने के पूर्व, झाड़ी के भीतर कुछ खड़खड़ाहट सी सुनपड़ी, और यद्यपि सभों ने उसे एकही समय में सुना, पर प्रत्येक ने यही विचारा कि उसीका कोई साथी हिला होगा। और जब तक अच्छी तरह सूर्योदय नहीं हो लिया, किसीने भी यह नहीं देखा कि ऊपर एक वृक्ष की घनी डालियों में एक मचान सी बनी हुई है, जो भूमितल से कोई आठ हाथ ऊंचे पर होगी। परन्तु उसपर के रहने वाले निकल भागे थे, और इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि वे अब हमारी पहुंच से बहुत दूर निकल गए थे। यह चूक बड़ी भारी हुई, और मुझसे बिना फूट फूट कर रोए न रहा गया। मेरे सब साथी मेरी इस विपद से बहुतही दुखी हुए।

अब हमलोगों ने कुत्ते से काम लिया, और भगोड़ों के मार्ग की खोज उससे लगी, परन्तु क्या हुआ! ज्यों ज्यों धूपकी गर्मी बढ़ने लगी कुत्ता भी बास कम पाने लगा और आगे कुछ भी पता न चला। कई दिनों तक सारा देश हमलोगों ने छान डाला, परन्तु मेरे प्यारे छोटू का कुछ भी सन्देश न मिला; न जाने वह जीता है या मर गया। निदान थके मांदे और हताश होकर हमलोग घर लौट आए। मेरी स्त्री की दशा का वर्णन करना असम्भव है। उसका वर्णन नहीं हो सकता, केवल अनुभव से ही इसका ज्ञान हो सकता है। परन्तु मुझे अपनी कहानी जल्दी से कहने दो, क्योंकि अभी बहुत सी कहनी है।

इस दुखदाई घटना के तीन मास परे, एक दिन सन्ध्या के समय जब मैं खेत से लौटा तो मैंने अपनी स्त्री को न पाया। पड़ोसियों में से कोई भी उसका कुछ समाचार न दे सका। मेरा सन्देह तुरन्त कारू सर्दार की ओर गया। क्योंकि मैं जानता था कि वह हमारे ही पड़ोस में शिकार खेलरहा था। उसकी वह चितौनी भी मुझे स्मरण हुई। इसलिये अपनी स्त्री को बचाने के प्रयोजन से तीन साथिओं को लेकर मैं रात दिन चलता चलता कारु के गांव में पहुंचा। जो जो विपत्तियां हमलोगों पर बीतीं उनके कहने का इस समय मुझे सावकाश नहीं है; इतना ही कहने से आप समझ जायंगे कि कारू ने इस कार्य का करना अस्वीकार किया, परन्तु उसके आचरण से मुझे विश्वास हो गया कि मेरा सन्देह सत्य है। मैंने उसे कप्तान साहब का भय दिखाया और कहा कि यदि वह मेरी स्त्री न दे देगा तो उसे और उसकी सब स्त्रिओं, उसके सब लोगों और सारे गांव को भस्मीभूत करादूंगा। वह भय और चिन्ता से रोने लगा, और अपनी स्त्रियों का एक झुण्ड दिखाकर बोला कि इनमें से जिन दो स्त्रियों को चाहो तुम ले लो, और कई एक बड़ी मोटी मोटी स्त्रियों की मुझसे विशेष कर प्रशंसा करने लगा। यदि मैं उन्हें लेकर चुप हो जाता तो उस दिन मैं मनमानती स्त्रियों का पति बन जाता। परन्तु द्विभाषी की बातें अच्छी तरह समझ में नहीं आती थीं, और ऐसा जान पड़ा कि कारू महाराज की आज्ञा है कि मेरी स्त्री को वह नहीं छोड़ेगा।

अब क्या करना चाहिए? हमारी छोटी सी बस्ती में इतने लोग कहां कि बाहुबल से कारू को धर दबावें। निदान मुझे एक बैल मोल लेना पड़ा जिसकी पीठ पर चढ़कर मैं कप्तान साहब की छावनी को चला। मार्ग में मुझे एक भी घर वा मनुष्य नहीं मिला। कई दिनों में कप्तान साहब की छावनी पर पहुंच कर मैंने अपना सब वृत्तान्त निवेदन किया। वे कारू का दुराचार सुन कर

बड़े क्रुद्ध हुए और उस अन्यायी के दण्ड देने के लिये एक हवलदार के साथ कुछ सिपाही उन्होंने मेरे सङ्ग कर दिए। मुखिया साहब ने जब सर्कारी सिपाहियों का दर्शन किया तो उसके प्राण निकलने लगे। परन्तु क्या करे, सामना करने का उद्यम करना ही पड़ा और एक बार फिर वह मुझे अपनी अनेक स्त्रियां घूस देने लगा।

जब इस महाभारत का उद्योगपर्व हो रहा था जिससे हमारी बस्ती का सत्यानाश अवश्य ही होता, कि एक दिन उसी देश के रहने वाले एक नौकर ने आकर कहा कि आप मेरे प्रभु से वृथा लड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। ठकुराइन उसके पास नहीं हैं। मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने उससे पूछा तू क्या बक रहा है? उसने उत्तर दिया साहब, आप चाहे कारू को भले मार डालें, परन्तु मैंने अपनी आंखों से देखा है कि नदी पार कई बनमानुस आपकी घरवाली को पकड़ ले गए हैं। आपको सुनकर बड़ा भारी दुःख होगा, केवल इसी भय से आज तक मैंने यह कथा गुप्त रक्खी थी; और कही के क्या करता, क्योंकि बनमानुस बहुत दूर निकल गए थे। उसने कहा कि वे उसे बांध कर यत्न से अपनी हथेलियों पर बैठा कर ले गए हैं; उस समय या तो वह मर गई होगी अथवा मूर्च्छित होगी, क्योंकि वह चिल्लाती नहीं थी और उसके लम्बे केश लटकते जाते थे।

उस दिन तक मैंने सब आपत्तियों को बड़े साहस से सह लिया था, परन्तु इस समाचार से मेरी बुद्धि ठिकाने न रही। मैं प्रलाप बकने लगा। और दैव को भी, मुझे ऐसी ऐसी कठिनाइयों में डालने के हेतु, गालियां देने लगा। मैं हाथ जोड़ भगवान से दीनता पूर्वक बिनती करता हूं कि वे मेरे सब अपराध क्षमा करें, क्योंकि उस समय मैं नहीं जानता था कि क्या बक रहा हूं। परन्तु यह भी सोचने की बात है कि यदि मेरी बुद्धि उस काल बेठिकाने न हो जाती तो इतनी भारी आपत्ति के बोझ से मैं पिस ही जाता। अब भी जब कभी उस दिन की बात मुझे स्मरण हो आती है तो मेरे हाथ पांव फूल आते हैं, सिर में चक्कर सा आजाता है और सारा जगत अन्धकारमय सूझने लगता है। इस भांति रोते पीटते अति दीन हीन दशा में एक वर्ष स्वप्न की भांति बीत गया। दूसरा वर्ष भी चल निकला, पर तब भी मेरा चित्त ठिकाने पर नहीं आया। अन्त में मैं घण्टों बैठा बैठा रोया करता, और धीरे धीरे मेरे दुःखों का पूरा पूरा अनुभव फिर मुझे होने लगता और मैं प्रायः घबड़ाकर चिल्ला उठता कि ओः! मेरे समान कभी किसीने आजतक दुःख नहीं भोगा होगा। अपने खलिहान के पास मैं बावला सा घूमा करता था, क्योंकि एक दिन जिस स्थान में मैंने बड़े सुख चैन से अपने दिन काटे थे, उसे छोड़ कर कहीं जाने को मेरा जी नहीं चाहता था। मेरे सब संङ्गियों ने मेरी खेती बारी का काम काज परस्पर बांट लिया था, और वे सदा यही आशा रखते थे कि कुछ दिनों में ईश्वर की इच्छा को मैं समझ जाऊंगा और जो कुछ उसने मेरे भाग्य में लिखा है उसीपर धीरज धर मैं सांसारिक माया में पुनः फंस जाऊंगा।

गत वर्ष के शेष भाग में एक आश्चर्यजनक समाचार हमारी बस्ती में फैल गया। काम्बू से दो स्त्रियां वहां आईं थीं। वे कहती थीं कि जब नरवल के जङ्गलों में वे फल बटोरने गईं तो उन्होंने वहां एक लम्बे बनमानुस के साथ एक मनुष्य के बालक को देखा और यह बालक बड़ा स्वरूपवान और गोरे रंग का था। उस बालक को वह बनमानुस बढ़िया से बढ़िया फल तोड़ कर दे रहा था और वह बालक भी चारो ओर खेलता और कूदता फिरता था और बनमानुस के कन्धों पर उछल उछल कर चढ़ जाता था।

यह समाचार इतना निराला और साधारण समाचारों से इतना अनूठा था कि बस्ती के सब लोग एकमत होगए कि स्त्रियां सच ही कह रही हैं, झूठ बोलने का उन्हें कोई कारण नहीं है, और इसलिये

हमलोगों को इसकी खोज भी लेनी परम आवश्यक है। हमलोगों ने कारू से सहायता मांगी। जङ्गलों की ओर जवार में उसकी सैकड़ों प्रजा बास करती थी, और सब उसकी आज्ञा मानती थी, और देश की भाषा और जङ्गली मार्गों से भी वे भली भांति परिचित थीं। कारू ने तुरन्त दया कर हमारी बात मान ली और कई मनुष्य और एक चतुर मार्ग-दर्शक हमारे आधीन कर दिया। सब समेत पचास मनुष्य कारू के यहां से आ पहुंचे और नौ सिपाही सरकार की ओर से भी हमारी सहायता को मिले। बर्ता में, देशी, परदेशी जो अस्त्रधारण करने के योग्य थे, हमलोगों के साथ हो लिए। और कुल मिलाकर हमलोग लगभग सौ मनुष्य हथियारबन्द घर से निकले। हमलोगों में से बहुतेरों के पास तलवार, बन्दूक और पिस्तौल भी थीं, और टापूवाले जो हमारी सहायता के लिये आए थे, केवल एक एक लम्बा भाला रखते थे। पूरे सात दिन तक हमलोग चलते ही रहे। रात को यात्रा करते और दिन को वृक्षों की शीतल छाया में विश्राम करते। निदान जिस देश की खोज में हमलोग निकले थे उसके पास आगए। यहां टापू के निवासिओं में से एक भ्रमणशील जाति का डेरा हमलोगों को मिला। हम सब को देख कर उन लोगों में बड़ी खलबली पड़ गई और ऐसा जान पड़ा कि वे हमसे घमासान युद्ध का उद्योग कर रहे हैं परन्तु हमारा मार्ग बतलाने वाला उन्हीं लोगों का बिरादरी था, उसने आगे बढ़ कर सब वृत्तान्त उनसे समझा कर कहा। तब तो वे हर्ष से उछलने, कूदने, इधर उधर दौड़ने और हू हू कर न जाने क्या कह कर चिल्लाने लगे। उनमें से एक मनुष्य, जो उनका मुखिया था, हमारे पास आया और मेरा हाथ पकड़ कर उसने मेरी हथेली में थूक दिया। मैं इसका अर्थ पहिले कुछ नहीं समझा, परन्तु कुछ विचार कर मैंने भी जब उसकी हथेली में थूक कर उसका सत्कार किया तो उसके आनन्द की सीमा न रही और अपना भाला मुझे दे कर वह मेरी सहायता करने पर उद्यत हो गया।

इस जाति से बड़ा भयानक सम्वाद यह सुन पड़ा कि बनमानुसों की पलटन की पलटन न जाने कहां से वहां आ गई है और शीघ्रही देश भर में अपना शासन विस्तार कर लेगी। कारण इसका उन लोगों ने यों बतलाया कि टूटूपड़ाङ् (उनके ईश्वर) ने सूर्यलोक से भी दूर किसी देश से उनके लिये एक रानी भेजी है जो उन्हें बोलना, काम करना और युद्ध करना सिखा रही है। उन पर उस रानी का बड़ा भारी अधिकार है। और जो लोग बनमानुसों को नहीं सताते वह उनको सदा उन लोगों को दुःख देने से रोकती है। बनमानुस सब उसकी बोली समझते हैं। वे अब मड़ैयों में रहते हैं और मनुष्यों की भांति आग भी जला लेते हैं, और आश्चर्य यह कि युद्ध के समय रानी की आज्ञा पाकर पंक्तियां बांध कर चलते और आक्रमण करते हैं। जो मनुष्य हमलोगों से यह सब समाचार कह रहा था, उसने यह भी कहा कि उसी की जाति की एक कन्या को बनमानुस अपनी रानी की दासी बनाने को पकड़ ले गए थे और उसके बालक की टहल करने पर उसे नियत किया था। परन्तु वह भयभीत होकर इतनी रोती कि रानी ने दयाकर उसे फिर यहीं भिजवा दिया।

अब तो आशा और भय दोनों ने मेरे हृदय में अधिकार जमाया—कभी एक का राज्य, कभी दूसरे का। आशा इस बात की कि यह मेरी ही स्त्री और पुत्र हैं और भय यह कि यदि वे मुझसे किसी भांति मिलने की चेष्टा करें तो यह राक्षस उन्हें फाड़ ही डालेंगे। लोकुओं ने (वह जाति जिनसे मैं अब बोल रहा था) मुझे ढाढ़स दिया कि भय का कोई भी कारण नहीं है, क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास है कि सब बनमानुस रानी के लिये अपना प्राण तक स्वाहा कर डालेंगे, परन्तु उसके सिर का एक बाल बांका न होने देंगे; परन्तु हमलोगों को उचित

है कि तुरन्त उन्हें घेरलें, क्योंकि यदि तनिक भी वे जान जांयगे कि हमलोग उन्हींके पीछे पड़े हैं, तो वे एक एक करके भाग जांयगे और फिर हम चाहे सारी पृथ्वी छान डालें, उनका पता न लगा सकेंगे।

निदान उसी रात के, लोकुओं की भी सहायता लेकर, एक बड़ी परिधि बना कर हमलोगों ने बनमानुसों के दल के चारो ओर से घेर लिया, और ज्यों ज्यों हमलोग आगे बढ़ने लगे, हमलोग सिमट कर एक दूसरे के पास आने लगे। दिन निकलते निकलते बनमानुसों का दल अच्छी तरह घिरगया। कमाण्ड का शब्द सुनते ही उन सभों ने अपने अपने अस्त्र शस्त्र उठा लिए, और निडर हो



लोकुओं का दल

कर रानी के बासस्थान के बीच में रखकर बड़े बड़े वीर नर तो बाहर बाहर खड़े हो गए और मादाएं भीतर की ओर खड़ी हो गईं। मादाओं के भी हाथ में लम्बे लम्बे सोंटे थे और नरों की भांति इनका मुख भी गम्भीर और भयानक देख पड़ता था। वे एक दूसरे से इतना सिमिट कर खड़े हुए थे कि उनके दल के भीतर की ओर कुछ ठीक ठीक नहीं लख पड़ता था; इससे अपने सहचर नौ तिलंगों के साथ मैं एक चट्टान की चोटी पर चढ़ गया, जहां से बनमानुसों के व्यूह की भीतरी अवस्था जानने की थोड़ी बहुत सम्भावना थी। आशा यह थी कि यदि मेरी चमेली ही इन लोगों की रानी हो तो वह यह तो जान जाय कि कौन आया है। परन्तु अब भी भीतर की ओर क्या हो रहा है नहीं जान पड़ा; परन्तु उसका नाम लेकर मैंने कई बार चिल्लाकर पुकारा, और उसके एक पांच मिनट पीछे उन डरावने योद्धाओं के दल के दल ने अपने अस्त्र शस्त्र समेट लिए और सब पीछे हट गए, जिससे सामने एक खुली सड़क सी बनगई कि जिससे मैं रानी की भेट के जासकूं।

इस भयानक मार्ग से होकर मैं आगे बढ़ा और यद्यपि सिपाही चारों ओर बड़ी सावधानी से मेरी रक्षा कर रहे थे, पर मेरा कलेजा मारे भय के धड़ धड़ कांपता था। निदान वहां मैंने अपनी स्त्री के देखा, मेरी ही स्त्री, मेरी प्यारी चमेली, मुझसे मिलने के सामने खड़ी है और मेराही छोटू उसकी दाहिनी ओर और एक सुन्दर भोली भाली गुलाब के फूल सी खिली हुई दो वर्ष की कन्या भी उसकी बांईं ओर खड़ी है। कन्या के देख पहिले मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु उसका मुखड़ा अपनी मा ही सा था। बिचारो तो सही, मेरे प्यारे मित्र! ऐसे मिलने के! क्या आजतक कभी कोई स्त्री पुरुष ऐसी अवस्था में मिले हैं? दोनों बच्चे अपने बालों के वस्त्रों में स्वस्थ और सुन्दर देख पड़े। परन्तु जब मैंने अपनी प्यारी का मुखड़ा ध्यान से देखा तो वह बहुत कुछ बदला हुआ जान पड़ा। यह केवल हृदय के भीतर छिपी हुई ज्वाला के कारण

था। जब मैंने उसे दोनों हाथों में पकड़ कर अपने हृदय से उसे लगाया तो वह कुछ अचेत सी हो गई, जिससे हमलोग थोड़ी देर तक बड़े उद्विग्न रहे। बच्चे दोनों के दोनों हम लोगों के पास से भाग गए, और अपनी मा के लिये रोते रोते उन्होंने अपने मित्र बनमानुसों की शरण ली। बनमानुस भी बड़े अचम्भे में भरे हुए जान पड़े, और उनमें से बहुतेरे डर कर इधर उधर छिपने लगे।

मेरी स्त्री को सुध आते ही मैंने उन जङ्गली पशुओं में से चल निकलने की बात चलाई। परन्तु उसने स्वीकार नहीं की और कहा कि मैं अपने रक्षकों से मित्रभाव से विदा होना चाहती हूं, क्योंकि उनके सन्मुख इस रीति से विदा होना उचित है कि यह कोई न समझे कि मुझे बल द्वारा मेरी अनिच्छा से तुम मुझे लिए जाते हो; क्योंकि यदि उन्हें इस बात का कुछ भी सन्देह हो तो वे सबके सब भिड़ जांयगे और तब उन्हें संभालना असम्भव हो जायगा। तब हमने सचमुच उन वनचरों के बनाए हुए मचानों की शीतल छाया में धूप की तीव्रता के समय विश्राम किया। मेरी स्त्री अपने भंडार की ओर गई, और उसने प्रत्येक बनमानुस को फल फूल, नरम नरम शाक, पत्तियां और मूलों का भाग बांटा और उन सभों ने भी बड़े हर्ष से उन्हें लेकर भोजन किया। हमें तो यह एक तमाशा सा जान पड़ता था, मानो टिकट लेकर मैं सर्कस का खेल देखने आया था। और मेरा छोटू भी एक ओर बनमानुसों के बच्चों में चारा बांट रहा था, और कभी किसीका गला पकड़ कर धक्का देता था, किसीको उसकी असभ्यता के लिये झिड़कता था, और उन्हींकी हू हू की बोली में न जाने क्या क्या हुकुम चला रहा था। वे बच्चे भी स्वाभाविक सेवकों की भांति उसकी आज्ञा को चुपचाप पालन कर रहे थे, और जान पड़ता था कि इस भांति अपने आचरणों के सुधारे जाने से वे अपनों को भाग्यवान सा समझ रहे थे। तब हम लोगों के भी भोजन के हेतु मीठे मीठे सुस्वादु बन-फल और एक प्रकार के वृक्ष के बकलों में निर्म[...] जल परोसा गया। परन्तु मुझे भोजन की रुचि [...] नहीं थी, अपने बाल बच्चों को इस भयावने संग[...] अलग करने ही के लिये मैं घबरा रहा था, क्यों[...] जब तक मैं वहां रहा, मुझे यह विश्वास नहीं हु[...] कि हमलोग निर्विघ्न हैं या मेरा परिवार सम्पू[...] रूप से मेरे आधीन है।

यह सब करके मेरी स्त्री खड़ी हो गई औ[...] अपनी प्रजा को कुछ समझाने लगी। बोलते सम[...] वह नाना भांति से सिर और हाथों को हिलाती [...] और अनूठे अनूठे प्रकार से अपने देह को मोड़[...] थी कि जिससे सब बनमानुस उसकी बातों [...] भली भांति समझ जांय। और सभों ने उसे सम[...] भी लिया, क्योंकि यह सुनते ही कि वह अप[...] सन्तानों के साथ उन्हें छोड़कर जाने वाली [...] उनलोगों में एक बड़ा किचिर मिचिर शब्द हो[...] लगा और इतना दुःख फैल गया कि मनुष्य-जा[...] उसका अनुभव नहीं कर सकती! उनमें से ब[...] तेरे घिघियाते और घसीटते हुए उसके सन्मु[...] आने लगे और वह भी उन सभों के माथे पर अप[...] हाथ रखने लगी। बच्चों में से बहुत से बालकों [...] पास आए और उनका हाथ पकड़ पकड़ अप[...] प्रेम दिखाने लगे। तब हमलोगों ने स्त्री और ब[...] के चारो ओर एक घनी परिधि सी बनाई औ[...] इससे बनमानुस, जो अब तक पीछा नहीं छोड़[...] थे, अलग हटा दिए गए। उस रात्रि को हमा[...] आवास-स्थान लोकुओं के थाने में नियत हुआ, औ[...] हमारे चारों ओर तिहरा पहरा बैठा दिया गय[...] क्योंकि सावधानी की विशेष आवश्यकता थी[...] रात्रि के समय यात्रा करने का साहस हमलो[...] को नहीं हुआ। परन्तु सभों ने मिलकर मे[...] स्त्री और बच्चों के लिये डालिओं और जङ्गल[...] लताओं से एक प्रकार की छाया-युक्त डोली [...] बना ली। तीन दीन तक लम्बे लम्बे और बलवा[...] वनमानुस हमलोगों के पीछे पीछे आते रहे। को[...] कोई निडर होकर हमलोगों के बीच में चले आ[...]

ग्रैर ग्रपनी रानी के देख जाते। रानी जी के मुख से ज्ञात हुग्रा कि वे इस बात की जांच करने ग्राते थे कि कोई उनको दुःख तो नहीं देता, ग्रथवा रानी जी ग्रैर कुमार कुमारी स्वच्छन्द तो हैं!

जाती बेर जितने दिन लगे थे, ग्रपनी बस्ती में उससे एक दिन पहिले ही हमलोग लैाट ग्राए, परन्तु मैं वहां एक रात भी नहीं ठहरा, ग्रैर तुरन्त कृपालू कप्तान साहब की सहायता से एक जहाज़ में बैठ कर निकोबर के ग्रन्तर्गत चैारा द्वीप में चला ग्राया। यहां मैंने फिर खेती का ठीका लेलिया है ग्रैर ग्राप लोगों की दया से यहां न बनमानुसों से भय है ग्रैर न कारू मुखिया ही पर सन्देह करना पड़ता है।

परन्तु ग्रपनी स्त्री को कहानी तो मैंने कही ही नहीं। इसे मैं संक्षेप में कह डालता हूं ग्रैर मुख्य मुख्य घटनाग्रों का सार मात्र ही कहता हूं, क्योंकि जब मूक पशुग्रों के बहुत से इङ्गित ग्रैर चिन्हादिकों का ठीक ठीक ग्रर्थ समझना बहुत कठिन है, तो उस बिचारी भय की मारी को सब बातों का कैसे यथार्थ ज्ञान हो सकता था। उसको वे क्यों चुरा ले गए थे इसे वह यों वर्णन करती है।

ये पशु, सदा पृथक पृथक दलों में बास करते ग्रैर ग्रपने नायकों की ग्रधीनता सब प्रकार से स्वीकार करते हैं। हमारे खेतों को लूटने के समय वे ग्रपने राजा के एक मात्र पुत्र को ग्रपने साथ लिया लाए थे। वह राजकुमार ही था जो हम लोगों के हाथ से मारागया था। परन्तु जब कुंवर जी को माता ग्रर्थात् महारानी पुत्रशोक से बहुत व्याकुल हुईं, तो बूढ़े महाराज स्वयं राजकुमार का सम्वाद लेने को रात्रि में चुप चाप निकल ग्राए। परन्तु जब उसे न पाया तो निराश हो मेरे पुत्र ही को उसके बदले उठा ले भागे, ग्रैर उसे निर्विघ्न ग्रपने काननमय महलों में पहुंचा कर महारानी को हाथों हाथ समर्पण किया। महारानी भी ऐसे सुन्दर गोरे बालक को पाकर कथञ्चित् पुत्रशोक भूल गईं ग्रैर बड़े लाड़ प्यार से उसे तीन मास तक ग्रपना ग्रमूल्य स्तनपान कराती रहीं। मेरे बालक को महारानी जी का दूध बड़ा गुणकारक हुग्रा, क्योंकि कोई बालक उसके समान हृष्ट पुष्ट ग्रैर निरोग नहीं है। तब वह कुछ कुछ चलने लगा ग्रैर बनमानुसों ग्रैर बनवासी दूसरे पशु ग्रैर पक्षिग्रों के शब्दों का ग्रविकल उच्चारण करने लगा; परन्तु उसके प्रतिपालकों के मन में यह बात ग्राई कि ऐसा सुन्दर राजकुमार यदि मानुषी शिक्षा न पावे ग्रैर बोलने की शक्ति से बञ्चित् रहे तो बड़े दुःख की बात होगी। इसी कारण मन्त्रिग्रों की सभा में यह युक्ति ठहरी कि बालक की ग्रपनी मा उसकी शिक्षा के लिये नियत की जाय। निदान इस कार्य को उन लोगों ने कैसी चतुराई से सम्पन्न किया यह तो ग्राप जानते ही हैं। उन्होंने चुपके से मेरे घर ग्राकर मेरी स्त्री के हाथ पैर बांध डाले ग्रैर उसके मुंह में लत्ता भर दिया ग्रैर बड़े वेग से उसे उठा लेगए। मेरी स्त्री कहती है कि जिन लोगों ने उनको इस प्रकार के कार्य में चलते नहीं देखा है वे उनकी गति की शीघ्रता का ग्रनुमान तक नहीं कर सकते हैं। उसके प्रति वे सब भांति दया ग्रैर नम्रता का ग्राचरण करने लगे ग्रैर उन्होंने उसको बहुत से उत्तम उत्तम फल ग्रैर जल दिए। परन्तु उसके धड़ से प्राण तो मानो निकल ही गए थे, खाए पीए कैान? हां, जब उसने ग्रपने छोटू को उन लोगों के बीच भला चङ्गा ग्रैर खेलता कूदता पाया, तो वह मारे ग्रानन्द के फूली न समाई ग्रैर उनके ग्राशय को कुछ कुछ समझने लगी।

बालक तुरन्त ग्रपनी माता को ग्रर्पित हुग्रा। वह धीरे धीरे यह भी जान गई कि सब लोग उसीकी ग्राज्ञा मानने को तैयार हैं। जब तक वह उन लोगों में रही, उसके घर लैाटने की इच्छा को छोड़ कभी उन लोगों ने उसकी ग्राज्ञा के प्रतिकूल कोई काम

नहीं किया । अपनी बेटी का नाम उसने बनदेवी रक्खा । हां, एक बात मैं कहना तो भूल ही गया हूँ । मेरी कन्या का जन्म, मेरी स्त्री को जब बनमानुस चुरा ले गए, उसके छ महीने पीछे हुआ था । मेरी स्त्री बनमानुसों की बहुत बड़ाई करती है, और उनकी सहृदयता, मार्मिकता, दया, प्रेम और बल वीर्य को बड़ी प्रशंसा करती है । उसके विचार में वे लोग एक भांति के गूंगे मनुष्य ही हैं । जितनी देर उन लोगों में मैं आप रहा था, मेरे भी मन में यह बात आई थी कि वे किसी प्रकार के मनुष्य ही होंगे । पुरुष तो उनके कठोर और भद्दे हैं ही, परन्तु बहुत सी स्त्रियों को जो देखा तो हमारे इस देश की नीच जङ्गली जातियों, जैसे भील धांगड़ों की स्त्रियों से, कोई कोई आंख नाक की अच्छी और अधिक रूपवती थीं, और उनकी हँसी, मुसकान, मीठी बोली, सभी मनुष्य की स्त्रियों ही से मिलती जुलती जान पड़ती थी । मेरी स्त्री ने उन सभों को एक एक पत्तिओं का गुच्छा कमर में बांधना सिखाया था, नहीं तो और बातों में क्या स्त्री क्या पुरुष, सम्पूर्ण नङ्ग धड़ङ्ग ही रहते हैं । भोजन उनका फल मूल है और वे मांस को छूते तक नहीं ।

इस कथा के प्रकाश करने में मुझे कोई बाधा नहीं है, क्योंकि सीता जी को भी राक्षसों के बीच बहुत दिनों तक रहना पड़ा था । परन्तु मैं यह नहीं चाहता के मेरे पुत्र कन्या को इस बात की सुध बनी रहे कि शिशुकाल में वे बनमानुसों में प्रतिपालित हुए हैं । हां, तुमने जो लिखा है कि 'सरस्वती' नाम की एक पत्रिका हमारे देश में छपती है और उसमें बनमानुसों का विषय काशी वालों ने छपवाया है, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो "सरस्वती" में मेरे देशवासिओं के चित्त विनोद के लिये मेरी कथा प्रकाशित कर सकते हो । यदि मेरी कथा सुनने की रुचि हो तो फिर आगे का वृत्तान्त किसी समय लिख भेजूंगा । जब तक मेरा दूसरा पत्र न पाओ, मुझे पत्र न लिखना, क्योंकि एक बार मुझे पास के एक बन्दर-स्थान में जहाज़ पर जाना है । वहां मेरी पुरानी खेती बारी का मूल्य-स्वरूप धन अब तक आ पहुंचा होगा, २४ दिन में मैं उसे लाने जाउंगा ।

तुम्हारा पुराना मित्र

सङ्कटसिंह ।

जापानी-साहित्य ।

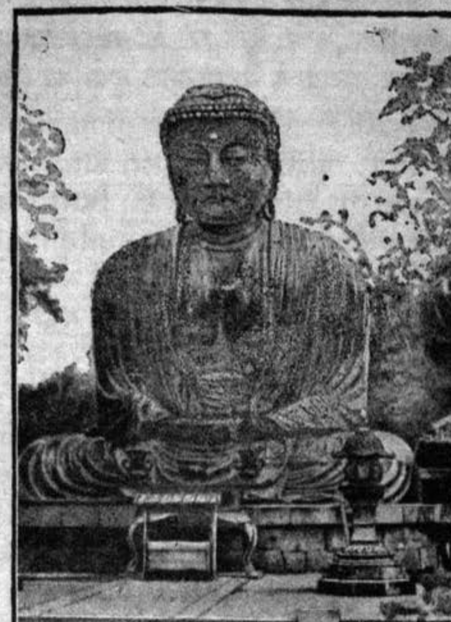
यदि आज दिन उन्नति-शील एशिया के सभ्यखण्डों की आलोचना करते हैं तो जापान ही को सबसे ऊंचे उन्नति के शिखर पर पहुंचा हुआ पाते हैं; क्योंकि शिल्प, वाणिज्य, विज्ञान, और युद्ध विद्याओं में इसकी बराबरी आज दिन कोई भी एशियाखण्ड-निवासी नहीं कर सकता । कुछ दिन पहिले जिस जापान को लोग असभ्य कह कर तुच्छ समझते थे, आज दिन वही सभ्यता के शिखर पर पहुंच कर भूमण्डल की उन्नतिशील जातियों के लिये आदर्श बन रहा है । इतिहास के देखने से जाना जाता है कि अभी तक जापानियों के समान संसार की कोई भी जाति इतनी शीघ्र उन्नति की चोटी पर पहुंचने में समर्थ नहीं हो सकी है, यहाँ तक कि पृथ्वी की समस्त सभ्य जातियां जापान के इस असम्भावित अभ्युदय को देख कर विस्मयापन्न हो रही हैं । एक दिन वह था कि जापानी लोग बुद्धदेव की जन्मभूमि भारत-वर्ष को तीर्थ समझ कर यहां आते थे, और एक समय यह है कि भारतीय युवक विज्ञान सीखने के लिये जापान जाते हैं ।

किन्तु इस समय जापान की उन्नति के इतिहास लिखने की हमारी इच्छा नहीं है, वरन् डाक्टर जर्ज ब्राण्ड्स् के एक प्रवन्ध का अवलम्बन करके जापानी साहित्य के विवरण को हम अपने हिन्दी साहित्य-रसिकों की भेंट करते हैं ।

सन् ४०० ईसवी से बराबर जापान पर चीन अपनी सभ्यता का प्रभाव डालता चला आता था। उसका यह प्रभाव हुआ कि जापानी लोग अपनी उन्नति के आगे चीन को भी उंगली दिखाने लगे हैं। किन्तु स्मरण रहे कि एशिया खण्ड की प्राचीन सभ्यता ग्रीस और रोम* के निकट जैसी ऋणी है जापानी सभ्यता भी चीन के निकट वैसीही ऋणी है। और योरप का पैलिसटाइन के साथ जैसा सम्बन्ध है, जापान का भारतवर्ष के साथ भी वैसा ही है। क्योंकि जैसे अन्य धर्म्मों को हटाकर खृष्ट धर्म्म ने योरप-खण्ड में विस्तार को पाया, वैसेही बौद्ध धर्म्म भीभारतवर्ष से जाकर जापान के प्राचीन शिन्तो धर्म्म को हटाकर उसका स्थानापन्न हुआ।

धर्म्म का साहित्य से बड़ाही घनिष्ट सम्बन्ध है, अतएव हम अब जापानी साहित्य के साथ वहां के धार्म्मिक तत्व का वर्णन करते हैं।

जापानी भाषा के पहिले धर्म्म ग्रन्थ का नाम "कोजिकी" है, जिसकी रचना हमलोगों के पुराण के ढंग पर की गई है। उस ग्रन्थ के एक भाग में शिन्तो धर्म्म की अनेक कथाएं जैसे लिखी गई हैं, वैसेही दूसरे भाग में ६२८ ईसवी तक का स्वदेशीय इतिहास भी लिखा गया है। ६७० ईसवी में जापान के सब देशों में विद्यालय स्थापित होगए थे, उसके थोड़ेही दिन पीछे अनेक विश्वविद्यालय भी स्थापित किए गए, और उनमें विद्यार्थियों को गणित, विज्ञान, इतिहास, व्यवहार शास्त्र, कानून और चीनी साहित्य की शिक्षाएं दी जाने लगीं। इससे ज्ञात होता है कि शिक्षा के विषय में जापान योरप से भी बहुत आगे बढ़ा हुआ था। उसी समय जापानी लोग चित्रविद्या और शिल्प कला कौशलों में बहुत कुछ उन्नति कर चुके थे। उसी समय में (सन् ७०० ईसवी) जापानियों ने बुद्धदेव का एक मन्दिर बनवाया था और नारा नामक स्थान में बुद्धदेव की एक बड़ी भारी धातु की मूर्ति स्थापित की थी।



बुद्धदेव की मूर्त्ति

सातवीं शताब्दी से जापानी भाषा में काव्य रचना का आरम्भ हुआ, पर इन (जापानी) काव्यों से और योरपीय काव्यों से अनेक विषयों में बहुत विभिन्नता है, क्योंकि जापानी काव्य का फैलाव बहुत थोड़ा है, यहाँ तक कि इस (जापानी) साहित्य में "लियड," "डिवाइन," "कमेडि," इत्यादि के सदृश कोई महाकाव्य नहीं हैं। और दार्शनिक, राजनैतिक, तथा व्यंगरसात्मक काव्यों का भी इस (जापानी) साहित्य में पूरा पूरा अभाव है। चौदहवीं शताब्दी में नाटक की सृष्टि भी इस साहित्य में हुई, किन्तु इस (नाट्य विद्या) ने कुछ विशेष उन्नति नहीं पाई, यहाँ तक कि अभीतक कोई नाट्य ग्रन्थ इस साहित्य में नहीं बना।

जापानी काव्य (साहित्य) ने केवल गीति काव्य में ही भली भांति पूर्णता प्राप्त की है और वे

* किन्तु स्मरण रहे कि अपनी अवस्था को सभ्यतम बनाने में ग्रीक और रोम भारतवर्ष के चिर ऋणी हैं।

खण्ड कविताएं बहुत ही थोड़े फैलाव और बहुत ही थोड़े भावों में कहीं गई हैं। उक्त कविताओं में केवल जापानियों के हृदयगत भावों का प्रकाश और स्वभावों का विकाश ऐसी अच्छी रीति से किया गया है कि जो उनके प्रधान उद्देश्य के। भली भांति से झलका रहा है। ये लोग अपनी कविता में प्रेम, मदिरा, प्रशंसा, आकांक्षा, और वेदना का प्रकाश उत्तम रीति से करते हैं। किन्तु इनकी कविता में सूर्य्यास्त और नक्षत्रालोक इत्यादि विषयों के भाव नहीं दिखलाई पड़ते।

जापानी साहित्य में विषय और भाव की बड़ी ही न्यूनता और छन्द की अतिशय दरिद्रता है। अभीतक इस भाषा में संस्कृत के समान अक्षरों की गुरू लघु मात्रा रखने का भी कोई नियम नहीं स्थापित हुआ है। उनके गद्य और पद्य के भेद जानने का केवल यही एक उपाय है कि पद्य के प्रत्येक चरण क्रम से पाँच वा सात मात्रा (syllable शब्दांश की एक मात्रा) के होते हैं। क्षुद्र काव्यों में "टङ्का" नामक क्षुद्र कविता का ही जापान में अधिकता से प्रचार है। एक टङ्का में केवल पांच ही चरण होते हैं, जिनके प्रथम चरण में पांच, द्वितीय में सात, तृतीय में पांच और चतुर्थ में सात मात्रा रहती हैं, जो सब मिलकर एकतीस मात्रा शब्दांश होती हैं।

सातवीं शताब्दी से लेकर आज तक जापानी कविता बहुत ही थोड़े विस्तार में बँधी हुई हैं। आजदिन भी वहां के सम्राट नवीन वर्षारम्भ में अपने सभासदों के "टङ्का" के बनाने के लिये बहुत से विषय (समस्या) देते हैं।

यहां पर यह भी कह देना उचित है कि जापान के सभी कवि लोग ऊंचे पद के अधिकारी हुआ करते हैं। और यह जो लोगों का विचार हैं कि प्रायः कवि लोग दरिद्री ही हुआ करते हैं, यह बात जापानी कवियों में नहीं है।

आज कल बहुत से लोगों का यह मत है कि स्त्रियां कविता नहीं कर सकतीं, उन्हें यह बात सुनकर आनन्दित होना चाहिए कि जापान में आधे से अधिक भाग उन स्त्रियों का है कि जो कविता बनाने* में पुरुषों से बहुत आगे बढ़ी हुई हैं।

जापान में कविता रचने की शिक्षा ऊँचे वंश वालों ही के। दी जाती है। किन्तु कोई कवि अपने ग्रन्थ में उस कविता को प्रकाशित नहीं कर सकता जो वहां के सम्राट की दी हुई समस्या (विषय) पर बनाई गई हो, वरन् उन समस्या-पूर्तियों में से उत्तमोत्तम कविताओं के। चुन कर सम्राट ही प्रकाशित करता है। नवीं शताब्दी में इसी प्रकार की एक पुस्तक संग्रह की गई थी, जिसमें चार हजार कविताओं का समावेश था।

जापानियों की मानसिक प्रकृति बहुत ही विचार-सङ्कुत है। इससे वे लोग कविता में रुपक पसन्द नहीं करते, और न वे लोग जड़ पदार्थों के गुण तथा शरीरधारियों के मनोभाव की कल्पना ही करते हैं। उनके ऐसे स्वभाव से जान पड़ता है, कि वे प्रकृति की विचित्रिता इत्यादि का ज्ञान ही नहीं रखते। वे लोग व्यक्तिगत भावों के झलकाने में जैसे अयोग्य हैं, वैसे ही वाक्यपटुता के बड़े अनुरागी हैं।

'शिकाडो' नामी सम्राट की जब क्षमता जाती रही और जब 'सगुण' अर्थात् पार्थिव सम्राट ने शासनदण्ड के। ग्रहण किया, तभी से जापानियों के चिन्ताराज्य में स्त्रियों के प्रभाव भी घटने लगे। उस समय प्रजा के लिये यह आज्ञा प्रचारित हुई कि किसी प्रजा के। भी राजभक्तिहीन न होना चाहिए, क्योंकि राजभक्ति ही प्रजा के लिये श्रेष्ठ धर्म्म समझा जायगा। उसी समय से जापानियों में राजा पर एकान्त भक्ति का रखना तथा आँख मूंदे हुए राजाज्ञा का पालन करना ही सर्व-प्रधान कर्म

* बङ्ग देश में स्त्री कवियों की संख्या कम नहीं है।